वरण-भूमि बंगाल

प्रथम अर्घ्य

वरण-भूमि बंगाल

प्रथम अर्घ्य

डॉ. लता बोथरा

जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
२०१०

Varan Bhumi Bengal
by Dr. Lata Bothra

This book was published by Jain Bhawan with the financial assistance of Shri Surendra chandra Bothra
Flat No. 1C&D, Jessore Herritage,
48/8 Jessore Road, Kolkata - 700 055
Contact : 9831077309 (M)

© Dr. Lata Bothra

प्रथम संस्करण :
सितम्बर २०१०

प्रकाशक :
अरुनिमा प्रिंटर्स
६ शिमला स्ट्रीट
कोलकाता-७०० ००६

मुद्रक :
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७

मूल्य : २००/-

पार्श्वनाथ

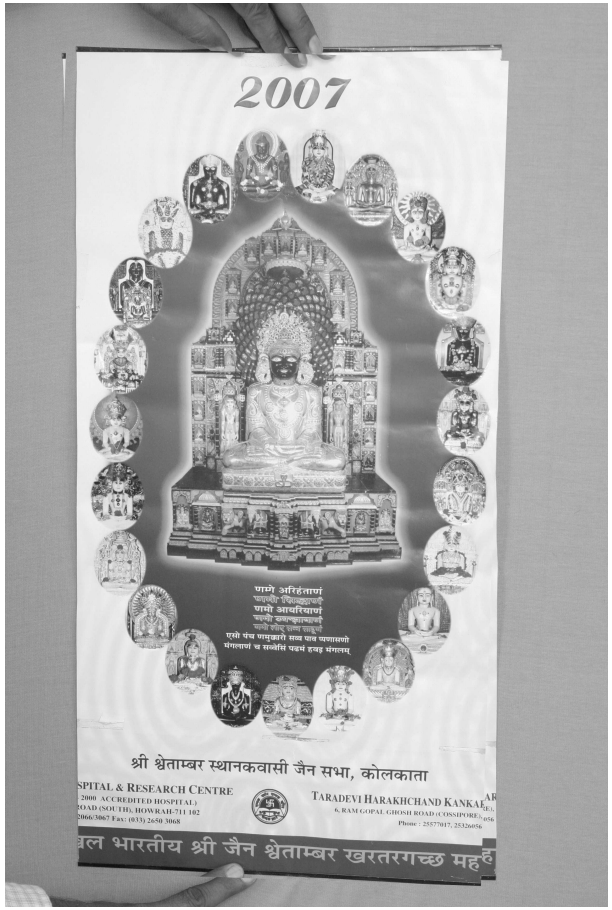

2007
णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं
एसो पंच णमुक्कारो सव्व पाव प्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम्
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता
SPITAL & RESEARCH CENTRE
2000 ACCREDITED HOSPITAL)
ROAD (SOUTH), HOWRAH-711 102
2066/3067 Fax: (033) 2650 3068
TARADEVI HARAKHCHAND KANKA
6, RAM GOPAL GHOSH ROAD (COSSIPORE),
Phone : 25577017, 25326056
ल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ मह

देवी पद्मावती

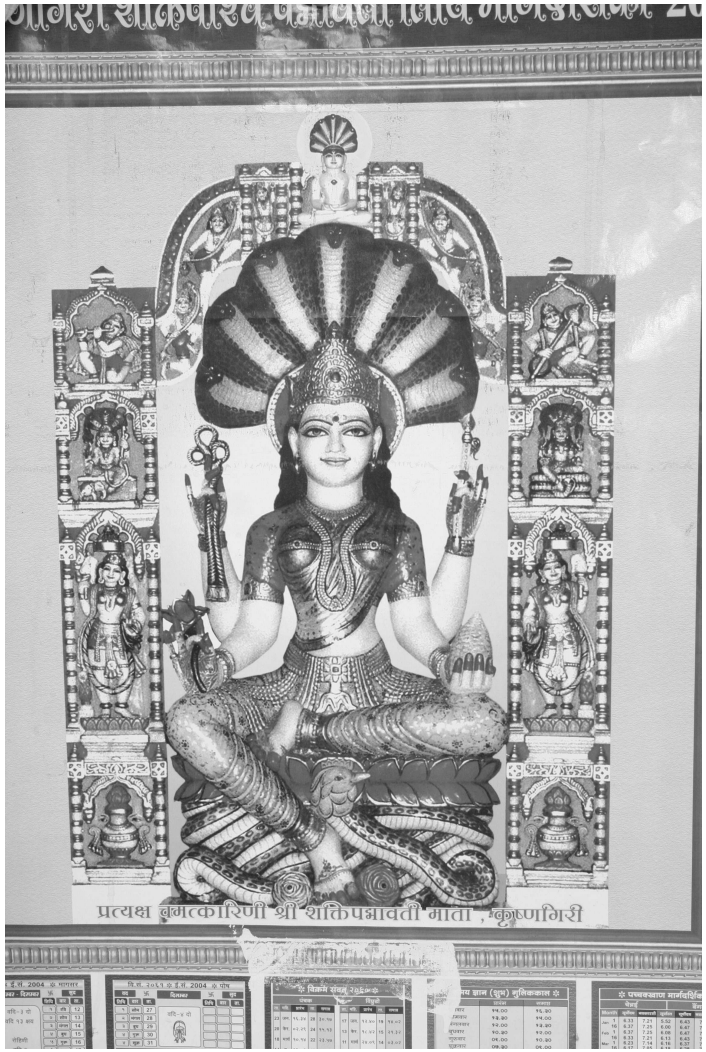

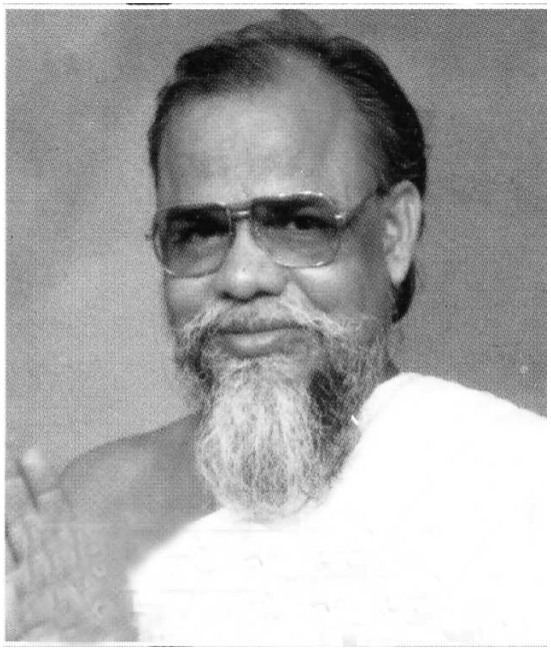

राष्ट्रसंत, युगद्रष्टा
प. पू. आचार्य श्री पद्मसागरसूरिश्वरजी म. सा.

अर्हम् नमः

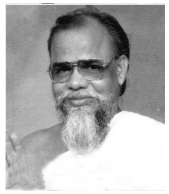

–: दो शब्द :–

शब्द शिल्पी लेखिका श्रीमती लता बोथरा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण **वरणभूमि बंगाल** पुस्तक प्रकाशित होने जा रहा है, जानकर प्रसन्नता हुई है।

लेखिका ने इतिहास की गहराई से खोजकर सत्य को उजागर करने का प्रयास किया है। भगवान महावीर के समय से लेकर मुस्लिम शासन काल तक के इतिहास को जोड़ा है। बंग देश का पूर्ण प्रामाणिक ऐतिहासिक परिचय भी इस पुस्तक से मिलता है।

एक समय में बंगाल प्रदेश में जैन संस्कृति का अच्छा प्रभाव था, खुदाई से प्राप्त जैन मूर्तियां, ताम्रपत्र, शिला लेखों से यह सिद्ध होता है। जैन ग्रन्थों और चरित्रों में भी इस प्रदेश के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। भगवान महावीर ने भी इस भूमि को पावन किया हैं। कालान्तर में दुष्काल एवं साम्प्रदायिक द्वेष-उपद्रव के कारण बंग प्रदेश में जैन श्रमणों का आवागमन न होने के कारण बहुत बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन आया एवं जैन संस्कृति का अस्तित्व प्रायः लुप्त होने लगा।

बहुत समय व्यतीत हो जाने के बाद पश्चिमी भारत से आकर बसे जैन श्रेष्ठियों ने फिर से यहाँ के जैन तीर्थों, कल्याणक भूमियों का पुनरोद्धार किया। अपने व्यापारिक क्षेत्र में भी प्रतिष्ठा प्राप्त की। विशेषकर मुर्शिदाबाद के जैन महाजनों ने जैन संस्कृति की पुनः स्थापना में अपना बहुत सुंदर योगदान दिया है। पुस्तक का लेखन शैली सुन्दर एवं रोचक है।

इतिहास की सच्चाई को ग्रन्थों, चरित्रों, शिला लेखों, भूगर्भ से प्राप्त मूर्तियों एवं विदेशी पर्यटकों के लेखों आदि से सिद्ध किया है।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़ने से जैन संस्कृति के भूतकालीन गौरव की जानकारी प्राप्त होगी, और बहुत कुछ प्रेरणा भी मिलेगी।

लेखिका ने इस पुस्तक को तैयार करने में जो श्रम लिया है, वह अभिनंदन के योग्य है। इस पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर मेरी मंगल कामना पूर्वक आशीर्वाद है।

पद्मसागरसूरि..
३०-८-९०
कोलकाता

सज्जनमणी पू. श्री शशि प्रभाश्रीजी म. सा.

आशीर्वचन

जैन धर्म अनादि है और सृष्टि के साथ ही आविर्भूत हुआ है। यह धर्म जितना प्राचीन है उतना ही सजीव, सक्रिय व प्रगतिशील भी। जैन दर्शन की प्राचीनता को व बंगाल के गौरवशाली इतिहास के महत्वपूर्ण तथ्यों को सामने लाने का अथक प्रयास किया– श्रीमती लताजी बोथरा नें। यह विषय कठिन ही नहीं अपितु कठिनतम भी है।

इस युग के आदिकर्ता आदिनाथ भगवान से अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी तक ने अपनी साधना व तप के लिये इस भूमि का वरण किया। श्रमण भगवान महावीर ने अपनी साधना व तप से स्वस्वरूप को पाने का अद्‌भुत प्रयास भी इसी बंग धरा पर किया।

अतः इस पुस्तिका के माध्यम से हमें इस बंग भूमि पर गर्वित होना चाहिये और हममें ऐसा विश्वास जागृत हो कि हम भी इसी बंग-भूमि पर हृदय परिवर्तन का अद्‌भुत कार्य कर सकें।

बंग-भूमि के इतिहास का विस्तृत परिचय जानने के लिये यह पुस्तक बेहद उपयोगी है। प्रतिभाशाली लताजी ने इस पुस्तक को परिश्रम पूर्वक तैयार किया– उन्हें बहुत-बहुत साधुवाद। इसी तरह ज्ञानपुष्प जिनशासन को समर्पित करते रहें– यहीं आशीर्वाद।

जिनशासन सेविका
शशि प्रभाश्री

त्वदीया वस्तु हे मातः तुभ्यमेव समर्पये

१९०९-१९९८
स्वर्गीय श्रीमती मैनादेवी बोथरा
धरमपत्नी स्व. जगतचंदजी बोथरा
अजीमगंज

अनुमोदनीय आवकार

(अभिनंदनीय अनुमोदना)

तीर्थंकर परमात्मा महावीर स्वामी की साधना भूमि एवं तपोभूमि बंगाल के विषय में न केवल भारतीयों को किन्तु जैनों को भी पूरा ज्ञान नहीं है। बंगाल के लोग भी इस गौरवशाली इतिहास से अनभिज्ञ है, यह अत्यंत दुःखद स्थिति है। आज हमारे प्राचीन अवशेष नष्ट हो रहे हैं या नष्ट किए जा रहे हैं। इससे हमारा इतिहास नष्ट हो रहा है। यह प्रत्येक भारतीय के लिए शर्मनाक स्थिति है। क्षितिमोहन सेन एवं प्रबोधचन्द्र सेन जैसे विद्वानों ने अनेक प्रमाणों के आधार पर प्राचीन बंगाल के इतिहास के पृष्ठों के ऊपर जमी हुई अपरिचय की धूल को हटाकर, गौरवशाली तथ्यों को हमारे सामने रखा है।

जैन धर्म अत्यंत प्राचीन धर्म है। ऋषभदेव से लेकर महावीर तक २४ तीर्थंकरों ने इस देश में समय-समय पर नई चेतना डालकर जन-जन को मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया। सभ्यता एवं धर्म के मार्ग को प्रशस्त किया। इससे पूरी मानवजाति को लाभ हुआ है। किन्तु कुछ लोग इस इतिहास को न जानने के कारण तर्क-वितर्क करते हैं। जैन धर्म की प्राचीनता पर प्रश्न खड़े किए जाते हैं। इन सब बातों को लेकर यहाँ लता बहन ने ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर निष्पक्ष चिंतन किया है जो प्रमाणिक भी है और उपयुक्त भी।

इस ग्रंथ में बंगाल का प्राचीन इतिहास अनेक ग्रन्थों एवं प्रमाणों के आधार पर लिखा गया है। हमारे देश के एवं विदेश के अनेक इतिहासकारों का मत प्रस्तुत करके इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता को और भी बढ़ा दिया है। आगम प्रमाण और बंगला में लिखे गए अल्पज्ञात ग्रंथों के प्रमाण भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

जैन धर्म के प्राचीन गृहस्थ साधक-उपासक सराक है। इसके आचार-विचार-कुल-देवी-देवता आदि के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन करके हमारे सामने अनेक नई बातें प्रस्तुत की गई है इससे न केवल बंगाल

के लोगों को अपितु जैनों को भी गौरव का अनुभव करने जैसी बात है। इसके लिए भी लता बहन को धन्यवाद देना चाहिए।

जैन आगम, भगवती सूत्र, कल्पसूत्र, आचारांग सूत्र आदि ग्रंथों के आधार पर भगवान महावीर की तपोभूमि बंगाल का सुंदर वर्णन किया है। तत्पश्चात् अनेक अभिलेखों, प्रतिमा लेखों एवं खुदाई से प्राप्त अवशेषों के आधार पर भी बंगाल में जैन धर्म की प्राचीनता का सुंदर वर्णन आधार प्रमाणभूत ढंग से किया है। अतः यह ग्रंथ प्रत्येक जैन के अवश्य पढ़ने योग्य है।

डॉ. लता बहन बोथरा को हमने ला. द. भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में व्याख्यान हेतु आमंत्रित किया था। किन्तु श्रीमती बोथराजी ने इस आमंत्रण को संकोचवश, सादर वापिस कर दिया तथापि हमारा आग्रह जारी रहा हमने उनको बार-बार साग्रह विनती की। अन्ततोगत्वा उन्होंने मेरी विनती को स्वीकार किया और 'वरणभूमि बंगाल' विषय पर व्याख्यान देने आई। एल. डी. इन्डोलॉजी के द्वारा आयोजित **वी. एम. शाह व्याख्यान माला** में आपने तीन दिन व्याख्यान प्रस्तुत किया। बड़ी संख्या में विद्वान उपस्थित थे और सभी ने व्याख्यान को सराहा और अभिनंदन किया। उसी समय हमने आपसे व्याख्यान को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का आग्रह किया था। मैंने आपको इसके लिए बार-बार विनती भी की थी। आपने अपने व्यस्त कार्यक्रम में भी लेखन कार्य चालू रखा और आज व्याख्यान पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहे है उसका हमें अत्यंत आनन्द है। हमें आशा है कि लता बहन ऐसे अनेक ग्रंथ तैयार करके समाज को लाभान्वित करेगी।

मैं लता बहन को अभिनंदन देता हूँ और भविष्य में ऐसे अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध कराती रहेंगी ऐसी हमारी श्रद्धा है।

जीतेन्द्र बी. शाह
निर्देशक
लालभाई दलपतभाई
भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर
अहमदाबाद

मेरे उद्‌गार

ऐतिहासिक विषयवस्तु पर चिन्तन करना तथा लिखना सबसे दुष्कर कार्य होता है क्योंकि किसी भी देश, राष्ट्र, समाज और जाति की बहुमूल्य निधि उसका प्राचीन इतिहास होता है। अतीत के अनुभवों से वर्तमान का निर्माण होता है, तथा भविष्य की योजना का निर्धारण किया जाता है। ऐतिहासिक घटनाएं साक्षी है कि जब-जब इतिहास की अवहेलना हुई है तब-तब विघटन घटे हैं लेकिन जब भी इतिहास से मार्गदर्शन लिया गया तो सृजन हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा यूनानी आक्रमणकारियों को पराजित करने के पीछे सिकन्दर द्वारा भारत भूमि पर किया गया आक्रमण और पोरस के संग युद्ध में पोरस की हार के कारणों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी की हार इतिहास की अवहेलना का परिणाम था। राजपूत राजाओं ने इतिहास से सबक नहीं लिया फलस्वरूप भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हुई।

किसी भी समाज व संस्कृति को नष्ट करने का अस्त्र भी इतिहास ही होता है। जिस धर्म, राष्ट्र, जाति या संस्कृति को नष्ट करना हो तो उसके इतिहास को नष्ट कर दो तो वह स्वतः ही धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा ये समयसिद्ध है। भारत की प्राचीन आदि संस्कृति के गौरव को नष्ट करने के प्रयास में मूल्यवान ऐतिहासिक धरोहरों को, प्राचीन दस्तावेजों को समाप्त करने और परवर्तित करने की चेष्टा ७वीं शताब्दी से अनवरत रूप से की जा रही है और परोक्षरूप से आज भी जारी है।

अतीत के इतिहास की अवहेलना अपने देश, अपनी संस्कृति के गौरव की अवहेलना है जिसका परिणाम हमारे सामने है। हमारे इतिहास के महत्वपूर्ण पृष्ठ आज भी अँधेरे में है। अनेक तथ्यों की उपेक्षा की गई है। धर्म और जाति के नाम पर भेद-भाव कर गूढ़ विषयों पर अन्य धर्मों के साहित्य की अनदेखी की जाती रही है। तर्क पूर्ण अध्ययन और विश्लेषणात्मक चिंतन

का अभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है जिसके कारण हमारा इतिहास पक्षपाती विचारधारा का पोषक बन गया है।

यह निर्विवाद है कि भारतीय सभ्यता सबसे प्राचीन है। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा के अवशेष इस बात के साक्षी है कि आर्यों के आगमन के पूर्व यहाँ एक अति उन्नतिशील संस्कृति विद्यमान थी जो वेदों में वर्णित व्रात्य, निर्ग्रन्थ, श्रमण संस्कृति थी। अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने अपने वर्णन में भी इस बात की पुष्टि की है। इसी श्रमण संस्कृति का विकास प्राच्य भूमि पर तीर्थंकरों और उसके बाद आचार्यों द्वारा हुआ जिसके प्रचुर प्रमाण बंगदेश में प्राप्त होते हैं।

प्राच्य भारत की बंगभूमि प्राचीन काल से ही जैन धर्म का प्रमुख गढ़ रही है जिसके स्पष्ट निर्देश हमें यहाँ भू-गर्भ से निकल रही सैंकड़ों जिन प्रतिमाओं से मिलते हैं। अधिकांश प्रतिमाएं गाँव के चबूतरों में, पेड़ों के नीचे सर्वत्र उपेक्षित बिखरी पड़ी है। कहीं-कहीं इन्हें अन्य देव रूपों में पूजा जाता है तथा अनेक स्थानों में इनके सम्मुख पशु बलि भी दी जाती हैं। बंगाल के कई जिलों में जाकर जब मैंने इनको देखा और इनके विषय में जानकारी हासिल की तो यह जानकर आश्चर्य हुआ कि ये ऐतिहासिक अवशेष जैन धर्म संबंधी अनभिज्ञता के कारण जैनेतर रूप में प्रचारित किये जा रहे हैं। यह क्षेत्र २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा अन्तिम २४वें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की कर्म भूमि रहा है जिसके प्रचुर प्रमाण प्राचीन आगम साहित्य में उपलब्ध है। वर्द्धमान, वीरभूमि आदि नाम भी इसकी पुष्टि करते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० कालीदास नाग, सुबोध चन्द सेन, श्री हरिसत्य भट्टाचार्य, श्री रामचन्द्र अधिकारी, आचार्य क्षिति मोहन सेन आदि ने भी अपने ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया हैं। अजय नदी के तटों पर व्रात्यकाल के भग्नावेश भगवान महावीर के पूर्व भी यहाँ श्रमण संस्कृति के प्रभाव को परिलक्षित करते हैं। ६०० ई. पू. भगवान महावीर ने इस क्षेत्र में ज्ञान की ज्योति जलाकर अज्ञान के अंधकार को दूरकर मानवता को पल्लवित किया था। मानव के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने का उन्होंने जो प्रयास किया था उसका प्रभाव इस क्षेत्र की भाषा, आचार व्यवहार में आज भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भगवान महावीर के बाद

जैनाचार्यों के कुल और गण के नाम बंग धरा से संबंधित मिलते हैं। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का निर्वाण स्थल बंग देश में था। (इस बात का स्पष्ट निर्देश पहाड़पुर से प्राप्त ताम्रपत्र से मिलता है।) सोमपुर बिहार की खुदाई से यह भी पता चला कि यहाँ पहले जैन विहार था। भगवान महावीर के चौथे पट्टधर गोविन्दाचार्य कोटपुर (देवीकोट) में आये थे। ई. पू. प्रथम शताब्दी में कालकाचार्य बंगभूमि की धरा से होते हुए ही सुवर्णभूमि गये थे ऐसा इतिहासकारों का मानना है। बारीबटेश्वर से प्राप्त सिक्कों से पता चलता है कि ६०० ई. पू. यह क्षेत्र गंगरादई सम्राज्य में था जो जैन शास्त्रों में वर्णित बंग जनपद था। मानभूम, वीरभूम और वर्द्धमान आदि जिलों में लगभग अढ़ाई हजार से तीन हजार वर्ष पुराने जैन अवशेष मिलते हैं जो जैन धर्म की प्राचीनता को और जैन धर्म के बंगाल के आदि धर्म होने की पुष्टि करते हैं। पूर्व बंगाल (बंगलादेश) में भी नरसिंहडीही, कोमिल्ला, महास्थानगढ़, मैनामती आदि जगहों पर प्राचीन जैन अवशेष खुदाई में मिले हैं तथा ५०० ई. पू. के पंचमार्क सिक्के भी प्राप्त हुए है। बंगलादेश से प्राप्त १८०० वर्ष प्राचीन १९वें तीर्थंकर मल्लीनाथ की मूर्ति की प्राप्ति उल्लेखनीय है। यह सब पुरातत्व बंग देश में जैन धर्म की अवस्थिति के प्रत्यक्ष प्रमाण है। पुण्ड्र वर्धन, मुर्शिदाबाद, वीरभूम, पुरुलिया, बाकुड़ा आदि से प्राप्त अनगिनत जैन अवशेष भगवान महावीर और उसके बाद जैनाचार्यों के आगमन के साक्ष्य है, हमारे पूर्वजों की विरासत है जिन्हें हमें सहेजना है, संरक्षित करना है। बंगला भाषा भी प्राकृत अर्द्धमागधी से विकसित हुई है। प्राकृत भाषा में साहित्य का समृद्ध भण्डार था जिसमें बंगाल के प्रमुख समृद्धशाली क्षेत्रों पुण्ड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त, समतट, कोटिशिला, कोमिला, पौण्ड्र आदि का वर्णन जगह-जगह मिलता है। इस क्षेत्र की समृद्धि का प्रमुख कारण जैन संस्कृति का प्रभाव रहा था। कालक्रम में राजनैतिक अस्थिरता, धार्मिक विद्वेष की भावना के कारण यहाँ का जैन सम्प्रदाय, जो यहाँ की उच्चकोटि की संस्कृति का प्रतीक था, छिन्न-भिन्न हो गया।

७वीं शताब्दी में ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान क्षत्रित्व के पतन का कारण बना। राजाओं के मन में देवी-देवताओं के भय का समावेश किया गया। यज्ञ हवन करो इससे दुःख दूर हो जायेगा, समृद्धि आयेगी, कर्म और

पुरुषार्थ को हीन बताकर मंत्र-तंत्र आदि में विश्वास जगाया गया, राजाओं को देवी-देवताओं की आलौकिकता का प्रभाव दिखाकर श्रमण परम्परा से विमुख किया। इस प्रकार क्षत्रिय परंपरा को खतम करके ब्राह्मणत्व का प्रभुत्व स्थापित हुआ। फलस्वरूप श्रमणों और श्रावकों को यहाँ से पलायन करना पड़ा। जो बचे थे उन्हें धर्म परिवर्तन के लिये मजबूर किया गया। मंदिरों को नष्ट तथा उसमें मूर्ति हटाकर लिंग को स्थापित किया गया। यद्यपि शिव को किसी ने देखा नहीं पर लिंग को शिवलिंग कह दिया। प्रमाण स्वरूप जी.टी. रोड के पास बराकर नदी के तट पर बेगुनिया में चार प्राचीन जैन मंदिर थे जिनमें शिवलिंग स्थापित कर देने के कारण अब इन्हें शिव मंदिर कहकर प्रचार किया जाता है। इस मिथ्या प्रचार द्वारा लोगों को विभ्रमित भी किया जा रहा है। इतिहासकार बी. सी. सेन ने अपनी किताब बृहत्त बंग के इतिहास में लिखा है कि "The Brahmin were responsible for wiping out Jainism from Bengal. Jain temples were converted into Hindu temples and even some of the deities who were widely worshipped were given Hindu names and worshipped as Hindu Gods without acknowledgement of their Jaina origin."

जैन धर्म ज्ञान मूलक दर्शन है और तीर्थंकरों की ये प्राचीन पाषाण मूर्तियाँ ज्ञान की साधना का आलम्बन है, आंतरिक सौन्दर्य की बाह्य अभिव्यक्ति है, शिल्पी के चेतनमन का रूपांकन है जो बिना सामूहिक साधना और आराधना के संभव नहीं है। साधक की साधना का प्रतिफलन ये निदर्शन जो ज्ञान के प्रतीक है उनकी संरचना के पीछे एक सुदृढ़ सांस्कृतिक परम्परा रही है जो ऋषभदेव के समय से प्रारम्भ हुई थी और जिसे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर ने चरम उत्कर्ष तक पहुँचाया। उन्होंने इस क्षेत्र में पुरुषार्थ और अध्यात्म की जो ज्योति जलायी उसने सदियों तक इस क्षेत्र को समृद्ध और शक्तिशाली बनाये रखा। अध्यात्म की गहराइयों को जिसने भी छुआ वहीं जैन बन गया। प्राचीन काल में तथा आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व भी यह क्षेत्र ज्ञानी और मनीषियों का क्षेत्र कहलाता था कालक्रम में जब जैन आचार्यों का आवागमन यहाँ अवरुद्ध हो गया तो यह सांस्कृतिक विरासत भी धीरे-धीरे

पतनोन्मुख हो गई लेकिन आज पुनः इस गौरवपूर्ण ऐतिहासिक धरा पर, इसी धरती के पुत्र जैनाचार्य आचार्य श्री पद्मसागर सूरिश्वरजी म. सा. के पुनः आगमन ने मन में आशा की एक किरण जगाई है श्रमण संस्कृति के पुनरुत्थान की। साध्वी श्री शशि प्रभाश्रीजी म. सा. का भी बंगाल की धरा पर पुनः आगमन यही संकेत देते हैं, और बंग भूमि में श्रमण संस्कृति की ज्योति को पुनः प्रज्वलित करने का उनका यह कृत् संकल्प साबित करता है कि भगवान महावीर ने जिस बंग धरा पर अध्यात्म और पुरुषार्थ का जो दीप प्रज्वलित किया था उसकी धुंधली होती लौ पुनः जाज्वल्यमान होगी।

गत् ३७ वर्षों से बंगाल मेरी कर्मभूमि है। यहाँ प्राचीन काल से जैन धर्म की क्या भूमिका रही है इस विषय की महत्ता और गुढ़ता ने इस पर शोध करने के मेरे संकल्प को दृढ़ बनाया। मेरे पति श्री सुरेन्द्र चंदजी बोथरा ने अपनी व्यस्त जीवन चर्या में से अमूल्य समय निकालकर मेरे इस शोध कार्य में कदम-कदम पर मेरा मार्गदर्शन किया। उन्हीं के कारण यह शोध कार्य आकार रूप ले सका है। प्रिय बांधवी श्रीमती माला बैद की मेरे शोध कार्यों में दिलचस्पी मुझे निरंतर चलते रहने की प्रेरणा देती है। इस ग्रन्थ के सम्पादन में उनका मुझे बराबर सहयोग मिलता रहा है। इस ग्रन्थ के लिये शोध सामग्री उपलब्ध कराने के लिये श्री शशिकान्त नवलखा, श्री ज्योतिकुमार नाहर, श्री महेन्द्र सिंघी तथा श्री प्रदीप कुमार बैद के सहयोग के लिये उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। अपने इस कार्य में मुझे जैन भवन के सभी कार्य कर्ताओं का भरपूर सहयोग मिला। सुश्री रेखा बाजपेयी और श्री विभास दत्त (अरुणिमा प्रिंटिंग वर्क्स) की भी आभारी हूँ जिन्होंने पूरी मेहनत और लगन के साथ इस शोध कार्य को साकार रूप दिया।

इसी धरा की बेटी, बहु और जननी तुल्या मेरी सासुजी सा. स्व. श्रीमती मैनादेवी बोथरा को समर्पित कर रही हूँ ये शोध ग्रन्थ **'वरणभूमि बंगाल'**। पुनः मैं उन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ जिनका मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सहयोग मिला।

लता बोथरा

वरणभूमि बंगाल

प्रथम अर्घ्य

युग पुरुष, अवतार या तीर्थंकरों की जन्म भूमि, सिद्धभूमि और निर्वाणभूमि को हम तीर्थ मानते हैं। इसके साथ ही उनके चरण स्पर्श से पवित्र रजोमय भूमि भी तीर्थभूमि है। भगवान महावीर ने अपनी साधना और तप के लिये जिस भूमि का वरण किया और जो भूमि उनके चरण रज से पवित्र हुई उस तीर्थ भूमि बंगाल के प्राचीन गौरवशाली इतिहास से आज के बंगाल निवासी अनभिज्ञ है। "भगवान महावीर ने राढ़ अंचल के दुर्गम पथों पर प्रतिकूल परिस्थितियों में विहार किया था। साधना और तप से ज्ञान प्राप्त किया और उस अंचल को अपरिसीम अनन्त करुणा से अभिषिक्त किया। हृदय परिवर्तन का इतना बड़ा प्रयोग इसी बंग धरा पर घटित हुआ।"

नेमीचंद जैन

भारतीय इतिहास के वर्तमान स्वरूप में हमें बंगाल के इतिहास की जानकारी क्रमबद्ध रूप से सातवीं शताब्दी में शशांक के समय से मिलती हैं। उससे पहले के ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा क्यों की गयी, क्या कारण रहा? यह जानना आवश्यक है। ब्राह्मण ग्रन्थों में बंगाल को अनार्य क्षेत्र माना गया था। सातवीं शताब्दी में धार्मिक उन्माद के प्रवाह और विद्वेष की भावना के कारण शैव वाहिनियों ने गाँव-गाँव में जाकर वहाँ के प्राचीन निर्दशनों को नष्ट तथा परिवर्तित किया और प्राचीन काल से चली आने वाली सांस्कृतिक परम्परा को जबरन धर्म परिवर्तन द्वारा समाप्त करने का प्रयास किया। इस प्रकार लगभग ११०० साल के इतिहास का दोहन कर उसकी तस्वीर को धुँधला कर दिया गया। वर्तमान में कुछ प्रबुद्ध विद्वानों ने उपलब्ध साहित्यिक एवं पुरातात्विक खोजों का आलोचनात्मक अध्ययन कर बंगाल के प्राचीन इतिहास के महत्वपूर्ण

तथ्यों को सामने लाने का प्रयास किया है। उन्हीं के द्वारा उद्‌घाटित तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में बंगाल के प्राचीन इतिहास की सही तस्वीर इस निबन्ध में रखने का प्रयास कर रही हूँ। इस संदर्भ में शान्तिनिकेतन के आचार्य क्षितिमोहन सेन का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है जो उन्होंने अपने शोध निबन्ध 'जैनधर्म और बंगदेश' में लिखा है।

आमादेर प्राचीनतम धर्मेर जेसब निर्दर्शन पाउया जाय
ताहा सवई जैन ताहार परे बौद्धयुग,
ताहार परे वैदिक धर्मेर मतवाद एसे छिल।

अर्थात् हमारे प्राचीनतम धर्म के जो निर्दशन मिलते है वे सब जैन है उसके बाद बौद्ध युग और बौद्ध युग के बाद वैदिक युग आया। साहित्यिक और पुरातात्विक इन दोनों महत्वपूर्ण आधारों का निष्पक्ष और आलोचनात्मक अध्ययन करने से आचार्य क्षिति मोहन सेन के इस कथन की पुष्टि होती है।

प्रसिद्ध विद्वान प्रबोध चन्द्रसेन ने भी इस विषय पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट लिखा है कि बंगाल-देश में वैदिक आर्यधर्म ने जैन, बौद्ध एवं आजीवक धर्मों के बाद प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। उनके अनुसार "बंगालदेश में सर्वप्रथम किस भारतीय धर्म ने प्रतिष्ठा एवं विस्तार प्राप्त किया था? इसी प्रश्न के उत्तर के लिये अब यहाँ विचार करने की आवश्यकता है। जैन और आजीवक धर्मों को ही बंगाल का आदि धर्म स्वीकार करना होगा।"

बंगाल का आदिधर्म, प्रबोधचन्द्रसेन

परवर्ती काल में आजीवक धर्म जैन धर्म में विलीन हो गया। शायद इसीलिए सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग भारत आया और उसने बंगाल का भ्रमण किया तो यहाँ पर निर्ग्रन्थों का प्रभाव सबसे ज्यादा पाया था। आजीवक सम्प्रदाय को उसने नहीं देखा था।

संस्कृति के आदि स्रोत पर विहंगम दृष्टि डाले तो सभी धर्मों के प्राचीन ग्रन्थों में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के विराट व्यक्तित्व का दिग्दर्शन मिलता है। चौदहवें कुलकर नाभि के पुत्र ऋषभदेव ने तत्कालीन मानव का पथ प्रदर्शन किया था। उन्होंने दीक्षा पूर्व अपने एक सौ पुत्रों को विभिन्न क्षेत्रों के संस्कार का दायित्व दिया था। उन्हीं के पुत्र अंग, बंग, कलिंग के अधिनस्थ क्षेत्र आज भी उनके नाम की स्मृति को जीवन्त बनाये हुए है। आचार्य जिनसेन के द्वारा लिखित महापुराण (पर्व १६) का यह आख्यान बंगाल के प्रारम्भिक इतिहास की ओर इंगित करता है। जहाँ जैन साहित्य में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र बंगसे इस क्षेत्र का नाम बंग पड़ा, जैनेत्तर साहित्य में राजा बलि की रानी सुदेशना से उनके पाँच पुत्रों का उल्लेख मिलता है। अंग, बंग, कलिंग, सुम्ह, पुण्ड्र। ऐसा माना जाता है कि उनके अधीन क्षेत्रों का नाम उन्हीं के नाम से पड़ा। बंगाल के आदिवासियों में बंग जाति के लोग सबसे प्राचीन माने जाते है इसी जाति से पूरे प्रदेश का नाम बंगाल पड़ा। बंगाल को 'Vabga, Vabgla, Vabgadesha' के नाम से पहचाना जाता था जो बंग शब्द से ही निकले है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह बंग शब्द आष्ट्रिक शब्द 'Bonga' से आया है जिसका अर्थ है 'Sun God'। ऋषभदेव की पूजा सूर्य देव के रूप में भी हमें मिलती है। जिस प्रकार सूर्य को इस जगत् के सारे जीवों का प्राण माना जाता है उसी प्रकार ऋषभदेव इस जगत् के सभी प्राणियों के संस्कार के उद्योगता माने गये हैं।

अनेक भाषाविद् बंग शब्द की उत्पत्ति तिब्बती भाषा के शब्द Bans से मानते हैं। जिसका अर्थ है नम या गीला। तिब्बत में बौद्ध धर्म से पूर्व बौन धर्म प्रचलित था और बौन धर्म से पहले वहाँ लिच्छवी राजाओं का राज्य था जो व्रात्य क्षत्रिय तथा श्रमण संस्कृति के अनुगामी थे। ऋषभदेव का निर्वाण तीर्थ अष्टापद कैलास तिब्बत में ही अवस्थित है।

अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि सिन्धुघाटी सभ्यता का पतन होने के बाद वहाँ से बौंग नामक जाति जो द्रविड़ भाषी थी एक हजार ई. पू. में इस क्षेत्र में आकर बसी।

"The kingdon of Anga Vanga and Magadha was formed by the 10 century B.C. located in the Bihar and Bengal regions. Exact origin of the word Bengla or Bengal is unknown. It is belived to be derived from the Dravidian Speaking tribe Bang that settled in the area arround the year 1000 B.C." लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार यह समय 1800 B.C. का है।

सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त सीलों से पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता श्रमण संस्कृति से प्रभावित थी। प्रो. रमा प्रसाद चंदा, प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकर तथा डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी ने इसका समर्थन करते हुए सिन्धु सभ्यता की सीलों को जैन संस्कृति से संबंधित बताया है।

"आज के जाम ग्राम के पास अजय नदी के उत्तरी तट पर स्थित पहाड़पुर गाँव से सिन्धु सभ्यता कालीन एक मातृमूर्ति का मस्तक प्राप्त हुआ है, जिससे सिन्धु जातियों के इस अंचल में आगमन का प्रमाण मिलता है।" श्री हरिप्रसाद तिवारी

अधिकांश इतिहासकार सिन्धु सभ्यता को द्रविड़ एवं अनार्य सभ्यता कहते हैं। बंग वासियों को भी अनार्य, दस्यू आदि से अभिहित किया जाता था। लेकिन इसके पीछे वास्तविक तथ्य कुछ और ही था। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं के प्राचीन इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि सभी जगह ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों का अपने-अपने प्रभुत्व को लेकर आपस में द्वन्द्व रहा था कभी राजा यानी क्षत्रिय वर्ग बलशाली रहता तो कभी पुरोहित वर्ग यानी ब्राह्मण जाति। यूरोप में भी राजा और चर्च के बीच प्रभुत्व की लड़ाई आरम्भिक काल से चली आ रही है। दूसरे शब्दों में कहे

तो यह ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों को अपने अधीन करने की चेष्टा थी। प्रारम्भ में भारत में ऐसा नहीं था सभी वर्ग अपने अपने कार्यों का निर्वाह सुचारू रूप से करते थे। लेकिन धीरे धीरे ब्राह्मणों ने अपना वर्चस्व बढ़ाना शुरू किया और अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिये, युद्ध करके क्षत्रियों को पराजित करने के लिये एवं भौतिक सुखों की कामना को पूर्ण करने के लिए यज्ञ बलि आदि द्वारा देवताओं को प्रसन्न कर अपना मनोरथ सिद्ध करना आरम्भ किया। परशुराम द्वारा पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करना इसी की पुष्टि करता है । इसके लिये मूल वेदों में भी परिवर्तन किया गया। बाद में इतिहासकारों ने इसे अपने स्वार्थ के लिए आर्य और अनार्य युद्ध का नाम दे दिया। प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर ने भी आर्य और अनार्य को भाषा के अन्तर में स्वीकारा है जातिगत में नहीं।अनार्य हुए साधारण जनता जिनकी भाषा प्राकृत थी और शिक्षित उच्च वर्ग के लोग जो सम्यकज्ञानी और आत्मज्ञान के विज्ञान से परिचित थे आर्य कहलाते थे। भारत ने अध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में उत्कर्षता प्राप्त की थी इसीलिये ही यह आर्यावर्त कहलाता था। जैनेत्तर ग्रन्थों में रावण जो महान पण्डित, ज्ञानी व विद्वान था उसको राक्षस और अनार्य कहा गया जबकि जैन साहित्य में रावण का विशेष स्थान स्वीकार किया गया है। इस तरह परवर्तीकाल में जो लोग श्रमण संस्कृति के थे उन्हें अनार्य का दर्जा दे दिया गया जबकि ये लोग क्षत्रिय जाति के थे। वायु और मत्स्य पुराण में बंगाल के पुण्ड्र, सुम्ह और बंग वासियों को क्षत्रिय बताया गया है।

क्षत्रियों का मूल धर्म है असहाय और निर्बलों की रक्षा करना। क्षत्रिय राजा प्रजा का पालन कर्ता माने जाते थे। एक क्षत्रिय वहीं होता था जिसमें दया, क्षमा और सहनशीलता हो। जो दृढ़ निश्चयी, पराक्रमी और संयमशील हो तथा अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रखे। अन्य वर्गों को अपनी छत्रछाया दें अर्थात् उनको सुरक्षा प्रदान करें। इसीलिये श्रमण संस्कृति में सभी तीर्थंकरों को क्षत्रिय कहा गया है। आदि तीर्थंकर

ऋषभदेव ने सबसे पहले क्षात्रधर्म की शिक्षा दी। महाभारत के शांतिपर्व में लिखा है कि, क्षात्रधर्म भगवान आदिनाथ से प्रवृत्त हुआ और शेष धर्म उसके पश्चात् प्रचलित हुए। यथा—

क्षात्रो धर्मो ह्यादिदेवात् प्रवृत्त :।
पश्चादन्ये शेषभूताश्च धर्म्म।।

(महाभारत शांतिपर्व १६/६४/२०)

ब्राह्मण पुराण (२।१४) में पार्थिवश्रेष्ठ ऋषभदेव को सब क्षत्रियों का पूर्वज कहा है।

प्रजा का रक्षण करना क्षात्रधर्म है, अनिष्ट से रक्षा तथा जीवनीय उपायों से प्रतिपालन ये दो गुण प्रजापति ऋषभदेव में विद्यमान थे। उन्होंने स्वयं दोनों हाथों में शस्त्र धारण कर लोगों को शस्त्रविद्या सिखाई। शस्त्र शिक्षा पाने वालों को क्षत्रिय नाम भी प्रदान किया। क्षत्रिय का अन्तर्निहित भाव यहीं था। उन्होंने सिर्फ शस्त्र-विद्या की शिक्षा ही नहीं दी अपितु सर्वप्रथम क्षत्रिय वर्ण की स्थापना भी की थी। ब्राह्मणों द्वारा धर्म ग्रन्थों का पठन और पाठन किया जाता था जबकि क्षत्रियों को धर्म ग्रन्थों की जानकारी के अलावा बहत्तर कलाओं की शिक्षा भी अर्जित करनी पड़ती थी। वीर और साहसी ही उत्कृष्ट त्याग और श्रेष्ठ तप कर सकता है अतः निवृत्ति धर्म क्षत्रिय धर्म था जो ऋषभदेव से प्रारम्भ हुआ और जिसकी छाप हमें सिन्धुघाटी की सभ्यता में प्राप्त होती है।

सिन्धु सभ्यता के निवासी इस क्षेत्र में आये और यहां बस गये। इस बात की पुष्टि यहाँ पर विद्यमान एक ऐसी जाति से होती है जिसने अपने अस्तित्व और परम्परा को आज भी अक्षुण्य रखा है, जिन्हें हम सराक नाम से जानते हैं। इस जाति में मुख्यतः दो गोत्र पाये जाते है आदि देव और ऋषभदेव। आदि देव ऋषभदेव का ही नाम है।

इतिहास के पन्ने नष्ट हो जाते हैं, विस्मृत हो जाते हैं लेकिन ऐसी परम्परा मानवों में प्रचलित है जो उन्हें उनके अतीत के साथ जोड़े रखती हैं और वह है उनकी जाति तथा गोत्र। अतीत में जिस युग पुरुष के द्वारा प्रवर्तित अनुशासन, रीति-रिवाज तथा शिक्षण प्राप्त किया जाता था वहीं गोत्र पिता कहलाते थे जो हजारों वर्षों के बाद भी परम्परागत रूप से उस जाति की पहचान का प्रतीक होते हैं। इस सराक जाति के गोत्र पिता ऋषभदेव होने के कारण यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि सराक जाति के पूर्व पुरुष ऋषभदेव या उनके कोई अत्यन्त ही निकट के व्यक्ति थे जिनके साथ उनका रक्त संबंध रहा था। यह इस बात का भी प्रमाण है कि ऋषभदेव के पुत्र बंग से ही बंग देश का अस्तित्व आया।

कल्पवृक्ष काल के अंतिम चरण में जब मनुष्यों की आवश्यकताएं बढ़ने लगी तब ऋषभदेव ने मनुष्य जाति को छः प्रकार के कर्म करने का शिक्षण दिया। उन्होंने अग्नि का प्रयोग सिखाया, कृषि, शिल्प, व्यापार आदि की शिक्षाएँ दी। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय तो उन्होंने मानव जाति को सारे संस्कारों का ज्ञान देकर सभ्यता और संस्कृति का प्रारम्भ किया। सराक जाति शिल्पी जाति है और इनकी शिल्प दक्षता भी इन्हें ऋषभ कालीन सभ्यता से जोड़ती है।

इस प्रकार हम देखते है कि आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने समाज को असि, मसि, कृषि और मिट्टी के पात्र निर्माण, वस्त्र निर्माण तथा भिन्न भिन्न कार्यों को सिखाया। वे ही मानव समाज को आदिम युग से धातु युग में लाये और उनके द्वारा दिखाये पथ पर ही एक विकासशील सभ्यता पनपी क्योंकि यह सभ्यता ऋग्वेद की रचना के पहले से ही विद्यमान थी अतः ऋग्वेद में भी इसकी झलक हमें मिलती हैं।

आज ऋग्वेद विश्व की सबसे पहली साहित्यिक कृति मानी जाती है । श्रमण संस्कृति की रचना के अनुसार वेद की रचना ऋषभदेव के पुत्र भरत द्वारा श्रावकों के लिये की गयी थी। प्राचीन वेद

विच्छिन्न होने के बाद अनेक नवीन श्रुतियों की रचना हुई जिसमें हिंसक बलि, यज्ञ, तथा शक्तिशाली देवताओं को प्रसन्न करने के लिये स्तुतियाँ की गई। महाभारत काल में इन विच्छिन्न हुई प्राचीन और नवीन श्रुतियों को एकत्रित कर वेद व्यास जी ने उनके चार भाग कर चार नाम से वेद बनाए। वेद की परवर्तीकालीन स्तुतियों से स्पष्ट होता है कि इस संस्कृति के लोग भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिये देवशक्तियों पर आश्रित रहने वाले थे। ऋग्वेद तथा अन्य वेदों की ऋचाओं में ऋषभदेव का उल्लेख इस बाद का परिचायक है कि ऋग्वेद के पूर्व श्रमण संस्कृति एक मात्र प्रमुख संस्कृति थी। ऋग्वेद सहिंता का अध्ययन करने पर एक जाति हमारा ध्यान आकर्षित करती है जो हिरण्य मणि द्वारा शोभायमान थी, व्यवसाय में दक्ष, जो रूप और सन्तान पर गर्व करती है, जो धनी, जो खाने-पीने में रुचिसम्पन्न, जो धन की खोज में सामुद्रिक यात्रा करती थी, लेकिन वे इन्द्र को नहीं मानती थी। जो देवहीन थी, यज्ञविहीन, देव निन्दक थी, ये ऋषियों को दान नहीं देती थी, एवं इनका दर्शन भी देवविहीन था।

ऋग्वेद में इन समृद्ध मनुष्यों को पणि नाम से अलंकृत किया गया है। इन समृद्धशाली पणियों से ही सम्भवतः हमारी प्राचीन मुद्रा का नाम पण एवं वाणिज्य संसार का नाम पण्य हुआ। इसी से समझा जा सकता है कि भारतवर्ष के प्राचीन युग में मुद्रा धातु के निर्माण के लिए आवश्यक ताम्र धातु सम्पदा इनके अधिकार में थी एवं भारतवर्ष की तत्कालीन अर्थ व्यवस्था में इन मुद्राओं का अत्यधिक महत्व था, क्यों कि धातु-सम्पन्न लोग हमेशा ही कृषि पर आश्रित लोगों की अपेक्षा अधिक समृद्ध एवं सम्पन्न होते है।

पणियों के मूल निवास के स्थान के संबंध में ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि ये सप्तसिन्धु के अंचलों के सादृश्य नवनवटी के उस पार प्राच्य देश के निवासी थे। प्राच्य देश में बिहार, उड़ीसा और बंगाल सम्मिलित थे।

ऋग्वेद में प्रायः प्रत्येक सप्तसिद्ध ऋषि-मुनियों की सूक्तियों में पणियों का उल्लेख आता है तथा इनको वश में करने के उद्देश्य से ऋग्वेद में सूक्तियों की रचना की गई है।

इससे यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद की रचना के पहले से ही इस देश में एक उन्नतशील सभ्यता एवं संस्कृति जो यज्ञ-विरोधी थी का उद्‌भव और विकास हुआ जिसे अति प्राचीन निर्ग्रन्थ धर्म के (जो वस्तुतः यज्ञ एवं हिंसा विरोधी है तथा जिसमें देवताओं की विशेष भूमिका नहीं है) साथ अभिन्न माना जाता है।

अथर्व वेद में व्रात्यों का प्रिय धाम प्राची दिशा बताया गया है-

बृहतश्च वैस रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां
च देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि।।४।।

पूर्व दिशा में अपना प्रियधाम बनाने वाला, बृहत, रथंतर, आदित्यदेवों तथा देवशक्तियों का प्रिय ही व्रात्य का सम्मान करता है।

जैनेत्तर ग्रन्थों में प्राच्य देश में ब्राह्मणों का जाना निषिद्ध था क्यों कि ये श्रमण संस्कृति के प्रभावक्षेत्र थे। बंगाल उस समय एक ऐसा आइना था जिसके सामने कोई जितने भी वस्त्र पहनकर क्यों न खड़ा हो जाय, उसका प्रकृत स्वरूप दीख ही जायेगा, अर्थात् ज्ञान के क्षेत्र में ब्राह्मणों को अपने स्तर का पता चल जाएगा। आइने में वस्त्र पहने हुए भी वस्त्र विहीन दशा यानि अपने प्रकृतस्वरूप के दर्शन होने के भय से ब्राह्मणों को वहाँ जाना निषिद्ध लिखा गया। वैदिक ब्राह्मणों का रुख इस क्षेत्र के निवासियों के प्रति शत्रुतापूर्ण था। ऋग्वेद में वर्णन है कि "ऋषियों के प्रति द्वेष रखने वालों को अपना शत्रु समझो, जो वेद से भिन्न व्रत वाले हैं दण्डित हो, यज्ञ परायण को यज्ञहीनों का धन प्राप्त हो।" व्रात्य, श्रमण एवं निर्ग्रन्थ धर्म का असर प्रागएतिहासिक काल से चौथी शताब्दी तक रहा जिसका प्रमाण खुद ऋग्वेद है। चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक यह प्रभाव

बिखरने लगा। 'व्रात्यों को हटाओं शिवलिंग बनाओं' जिसकी तसवीर बंगाल में हमें देखने को मिलती है। आज के इतिहासकारों ने तीर्थंकर हो, चाहे देवता हो सभी को देवी बनाकर स्त्री का रूप दे दिया। इस तरह के लेख, उपमायें और किवंदतियां देखने एवं पढ़ने को मिलती है तो बड़ा ही दुःख होता है। सही दृष्टिकोण से लिखने वाला कोई नहीं है। जहाँ तीर्थंकरों के चरण पड़ते हैं और जहाँ तीर्थंकर विचरते है वहां के लोग हर क्षेत्र में शीर्ष अवस्था को प्राप्त करते हैं। कहाँ गये वे लोग, वो श्रेष्ठी, व्यापारी, व्रात्यक्षत्रिय जो शांतिप्रिय थे, दृढ़ विश्वासी और सही मार्ग पर चलने वाले, अपने पुरुषार्थ पर आधारित रहने वाले। ७वीं शताब्दी के बाद बंगाल में क्या विघटन घटा यह विचारणीय है।

सिन्धु घाटी सभ्यता के पश्चात् महाकाव्य काल (रामायण और महाभारत) का समय निर्धारण किया जा सकता है क्योंकि सिन्धु-सभ्यता में इन दोनों काव्यों के समय की संस्कृति का कोई उल्लेख तथा अवशेष नहीं मिला है। महाभारत के भीष्म पर्व में वर्णन है कि कुरूक्षेत्र के युद्ध के समय बंगाल के राजाओं ने कौरवों के पक्ष में बहादुरी के साथ युद्ध किया था।

There is a description of the encounter between the Pandus and the mighty ruler of the Vangas. While some of the Bengali Kings fought on elephants, other rode on ocean bread steeds of the hue of the moon. गौढ़ के राजा वसुदेव के साथ कृष्ण के युद्ध का भी वर्णन मिलता है। द्रौपदी के स्वयंवर में बंगाल के तीन राजकुमारों की उपस्थिति का उल्लेख है। महाभारत में बंगाल के तटीय प्रदेशों के लोगों को मलेच्छ कहा गया क्योंकि उस क्षेत्र के लोग श्रमण परंपरा के अनुयायी थे। प्राचीन सुदृढ़ श्रमण सांस्कृतिक परंपरा की बुनियाद कमजोर करने के लिये मुनियों से च्युत हुए ऋषियों ने इन

महाकाव्यों को अपने अनुसार ढालकर पुनः रचित कर प्रचारित किया। इस संदर्भ में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का यह कथन महत्वपूर्ण है–

"Myths and Legends of Gods and heroes current among the Austrics and Dravidiands, long attending the period of Aryans advent in India (1500 B.C.) appeared to have been rendered in the Aryan language in late and garbled or improved version according to themselves to Aryan Gods and heroes of the world and it is these myths and legends to Gods and sages we largely find in Puranas".

महाभारत में वर्णित खरबट या करबल ताम्रलिप्त के निकटस्थ नगर थे। उस समय का शुभम देश आज का हावड़ा कहा जाता है। महाभारत में वर्णित अंग में बंग भी शामिल माना गया है। मुर्शिदाबाद जिला भी इसमें सम्मिलित था।

The Mahabharata states that Anga included even Vanga, that is, the deltaic Bengal between the Bhagirathi in the west and the Meghna-Padma in the east; if this be true, then the Anga-Vanga country included the whole of the modern district of Murshidabad.

तीर्थंकर पार्श्वनाथ– नगेन्द्र नाथ बसु के अनुसार तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अंग, बंग, कलिंग में विहार किया था। ताम्रलिप्त बंदरगाह से कलिंग की ओर अवस्थान करते हुए कोप कटक में धन्य नामक गृहस्थ के घर आहार भोजन ग्रहण किया था। यह ९०० ई. पू. की बात है। भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण स्थल सम्मेत शिखर बंगाल के एकदम निकटवर्ती क्षेत्र में अवस्थित है। यह २० तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि मानी जाती है।

Among other Tirthankaras Parsvanatha and Neminatha before Mahavira belong to an age close to the threshold of history. It may be recalled that 20 of the 24 Tirthankaras from Rsabhanatha to Mahavira attained their *nirvana* on the crest of the Sammeta Sikhara, i.e. the mount of Parsvanatha in eastern India. Standing in a picturesque landscape of Hazaribagh district close to West Bengal, the hill has both an idyllic and holy association. It is sacred to the Jainas.

Jainism in Ancient Bengal, P.C. Das Gupta.

भगवान महावीर के साधनाकाल में इस क्षेत्र में विहार के समय यहाँ पर पार्श्वनाथ सम्प्रदाय की साध्वियों का भ्रमण करने का उल्लेख जैन साहित्य में मिलता है जिससे पता चलता है कि २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रभाव इस क्षेत्र में व्याप्त था। राढ़ क्षेत्र के करीब ही सम्मेत शिखर पर उनका निर्वाण हुआ था। अतः बंग देश में निश्चित रूप से उनका विचरण हुआ था। पार्श्वनाथ सम्प्रदाय के साधुओं से भगवान महावीर के वार्तालाप का वर्णन भगवती सूत्र में हमें मिलता है। भगवान पार्श्वनाथ के लिये भगवान महावीर ने कहा था –

पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं सासए लोए
बुइये अणाइए अणवदग्गे परित्ते परिवुडे

Arhat Parsva, the most respected of men, ordained the sphere to be ebrnal, urthoub a beginning and without an end.....

Bhagavati Sutra Bk 5 ch. 9

बंगाल की प्राप्त प्राचीन मूर्तियों में पारसनाथ की मूर्तियों की प्रचुरता है। बंगाल में रोग और विष हरणकारी देवता के रूप में भगवान् पार्श्वनाथ के विषय में विश्वकोष में लिखा है कि उन्होंने

জনহিত কে লিয়ে দেশ-দেশান্তর ভ্রমণ কিয়া, এক বার পুণ্ড্রদেশ মেঁ আয়ে ঔর বহাঁ সে তাম্রলিপ্ত গয়ে। দক্ষিণ রাঢ় অংচল মেঁ তুংগিয়া নামক এক প্রাচীন নগর থা জহাঁ পার্শ্বনাথ কই বার আয়ে থে। পরবর্তী কাল মেঁ যহ শ্রমণ সংস্কৃতি কা এক মহত্ত্বপূর্ণ কেন্দ্র বন গয়া থা। ভূমিজোঁ মেঁ এক গোত্র 'পরশ' বহুত প্রচলিত হৈ। পার্শ্বনাথ নে বংগাল কে সুন্দরবন, বিক্রমপুর তথা মানভূম মেঁ ভী বিচরণ কিয়া থা।

"The Jain religious head Parasnath himself is said to have preached Jainism in Sunderban, Vikrampur and Manbhum areas of Bengal."

Eastern Himalayan culture, Ecology And People

ডাঁ০ তপন চক্রবর্তী কা মাননা হৈ কি পার্শ্বনাথ কা প্রভাব বংগাল মেঁ ইতনা প্রবল রহা জিতনা কিসী অন্য দেবতা কা নহীঁ। স্বর্গীয় ডাঁ. তপন চক্রবর্তী নে অপনী পুস্তক 'বংগলা সমাজ ঔর সাহিত্য মেঁ জৈন ধর্ম ঔর সংস্কৃতি' মেঁ ইস বিষয় পর প্রকাশ ডালতে হুএ লিখা হৈ— বিশ্বকোষের ৩০২-৩০৩ পৃষ্ঠায় পার্শ্বনাথ সম্পর্কে লেখা হয়েছে– পরে তিনি বিশ্বের মঙ্গল কামনায় পুনরায় নানা দেশ দেশান্তরে ভ্রমণ করিতে লাগিলেন। একদিন ভ্রমণ করিতে করিতে পুণ্ড্র দেশে আসিয়া উপস্থিত হইলেন। কিছুদিন পরে তথা হইতে তাম্রলিপ্তে গমন করিলেন...। শিব, সুন্দর, সৌম্য ইত্যাদি পার্শ্বনাথের শিষ্য হইল। পার্শ্বনাথ সেখান হইতে ক্রমে নাগ পুরীতে উপস্থিত হইয়া জনৈক ধনাঢ্য অথচ পণ্ডিত বন্ধু দত্ত নামক যুবককে বিবিধ ধর্মের উপদেশ দিলেন।

উপরোক্ত তথ্যটি সম্ভবত: পরবর্তীকালের পার্শ্বচরিত কথা ও কাব্য থেকে বিশ্বকোষ সংগ্রহ করেছিল। এই তথ্যটি বাংলায় পার্শ্বনাথের ব্যাপক ভ্রমণ ও সাংগঠনিক কার্য্যকলাপকেই প্রতিষ্ঠিত করে। শুধু জৈন বা অন্যান্য সাহিত্যের উল্লেখেই নয় বাংলা ও বাঙ্গালী জাতির উপর পার্শ্বনাথের ব্যাপক প্রভাব থেকেও একথা প্রমাণিত হয় যে পার্শ্বনাথের সংস্পর্শ এ অঞ্চলে অত্যন্ত গভীর ছিল।

বিশেষ করে বর্তমান মেদিনীপুর, বাঁকুড়া ও পুরুলিয়ার সীমান্ত অঞ্চলে পার্শ্বনাথ তথা পার্শ্বাস্পত্য সম্প্রদায়ের একটি বড় কেন্দ্র ছিল বলে মনে হয় কাঁসাই ও কুমারী নদীর অববাহিকায় পুরুলিয়ার মানবাজার পুঞ্চা থেকে বাঁকুড়ার রানীবাঁধ, খাতড়া রাইপুর এবং মেদিনীপুরের বিনপুর জামবনি পর্য্যন্ত বিস্তীর্ণ এলাকায় পার্শ্বাস্পত্য সম্প্রদায়ের বৃহৎ কেন্দ্র ছিল একথা মনে করার যথেষ্ট কারণ আছে। এখানকার স্থান নাম এবং প্রাপ্ত মূর্তি ইত্যাদি বিচার করলে পার্শ্বনাথের কথাই মনে আসে। এখানে পরেশনাথ নামে একটি গ্রামই রয়েছে যেখানে বহু জৈন মূর্ত্তি ও মন্দির পাওয়া গিয়েছে, তাছাড়া অম্বিকানগর, পাক্‌বিররা, ডাইনটিকরি, জামবনী বিনপুর, রাইপুর, দেউলভেড্যা, ইত্যাদি প্রায় সব জায়গা থেকেই পার্শ্বনাথ ও অন্যান্য তীর্থংকর ও জৈন শাসকদের দেব দেবীদের মূর্ত্তি প্রচুর পরিমাণে পাওয়া গিয়েছে।

প্রাচীন বাংলায় এই অঞ্চলটি তুঙ্গভূম নামে পরিচিত। আমরা ভগবতী সূত্রে একটি প্রাচীন নগরের নাম পাই যার নাম তুঙ্গিয়া। যেখানে পার্শ্বনাথ প্রায়শই যেতেন। এবং পরবর্তীকালে পার্শ্বাস্পত্যদের একটি বড় কেন্দ্রে পরিণত হয়েছিল। ভগবতীর বর্ণনা মতো যদিও স্থানটি রাজগৃহের কাছে কিন্তু এই বর্ণনায় কিছু ভুল আছে বলেই মনে হয়। কারণ পরবর্ত্তীকালে জিন প্রভসূরী তার বিবিধ তীর্থকল্পে তুঙ্গীয় বৎস দেশে অবস্থিত বলে বর্ণনা করেছেন। দশমশতকে লেখা স্বয়ংভুর পয়ুসচরিউ গ্রন্থে তুঙ্গ বিষয় নামেও একটি অঞ্চলের নাম পাওয়া যায়। এবং তুঙ্গিকারন নামে একটি প্রাচীন গোত্রও রয়েছে। ভদ্রবাহুর স্তরু যশোভদ্র ঐ গোত্রের। এই গোত্র নামের উল্লেখ আমরা মথুরা লেখেও পাই। তাই মনে হয় তুঙ্গীয়া, তুঙ্গ বিষয় ইত্যাদি পৃথক পৃথক স্থান হতে পারে। তার মধ্যে পার্শ্বনাথের কেন্দ্র বলে পরিচিত স্থানটি বাংলার এই পুরুলিয়া বাঁকুড়া, ও মেদিনীপুর সীমান্তে বলেই মনে হয়। বিশেষকরে পরেশ নাথ অম্বিকানগর অঞ্চলটি।

পার্শ্বনাথের প্রভাব স্থান নামে, গোত্র নামে (ভূমিজদের একটি গোত্রের নাম পরশা) ব্যক্তি নামে (পরেশ) এমনভাবে বাংলার সর্বত্র ওতোপ্রোতভাবে

জড়িয়ে আছে যে কোন ধর্মীয় দেবতা তথা ধর্মপ্রবর্তক তাঁর মত প্রভাব বিস্তার করতে পারেনি। বিশেষভাবে আদিবাসীদের মধ্যে তার প্রভাব অসামান্য। বহু পার্শ্বনাথ মূর্ত্তি লোক দেবতায় পরিণত হয়ে নানা নামে আজও আদিবাসী তথা নিম্নবর্গের মানুষের দ্বারা গ্রামে গ্রামে পূজিত হচ্ছে।

শুধু পার্শ্বনাথই নয় পরবর্তীকালে পার্শ্বনাথের শাসন দেবী পদ্মাবতীও প্রভূত প্রভাব বিস্তার করেছে।

বাংলায় পার্শ্বনাথের এই প্রতিপত্তির একটা বড় কারণ হলো রোগ ও বিষ হরণকারী দেবতা হিসেবে পার্শ্বনাথের প্রতিষ্ঠা। এই লোকবিশ্বাসের মধ্যে থেকেই পার্শ্বনাথ সবচেয়ে বেশী জনপ্রিয় হয়েছে।

—তপন চক্রবর্তী

তীর্থংকর পার্শ্বনাথ का निर्वाण इसी क्षेत्र के बहुत ही निकटवर्ती सीमान्त में होना बंगाल में जैनधर्म की प्राचीनता का अकाट्य प्रमाण है

पार्श्वनाथ की शासनदेवी पद्मावती की भी यहाँ बहुत मान्यता है। जिसके कारण गंगा की एक धारा का नाम पद्मा पड़ा।

गंगा की दो शाखाएं भागीरथी और पद्मा बंगाल की संपदा और समृद्धि का प्रतीक है। सगर राजा के पौत्र भागीरथ के नाम से गंगा की पश्चिमी धारा को भागीरथी कहा जाने लगा तथा ऐसा माना जाता है कि इसी गंगा की जलधारा से सगर पुत्रों को मुक्ति प्राप्त हुई थी। तभी से ये विश्वास प्रचलित हो गया कि भागीरथी के जल स्पर्श से हर पाप का विनाश होता है, मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः भागीरथी को एक पुण्य सलिला नदी माना जाता है, देव नदी है। गंगा के पूर्व यात्रा का प्रवाहपथ पद्मा के नाम से प्रसिद्ध है जो बंगाल की वृहत्तम नदी है। इसके बावजूद भी यह पाप प्रवाहिनी तथा कीर्तिनाशा कहलाती है। कवि कृतिवास का कहना है कि पद्मा के जल के स्पर्श से मुक्ति नहीं

मिल सकती क्योंकि पद्मा का जल अपवित्र है। पद्मावती के प्रति हिन्दु समाज की अश्रृद्धा के कारण को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा कि स्वर्ग से मृत्यलोक में अवतरण करने के बाद गंगा देवी को पद्मा का नाम देकर पद्म नामक जैन मुनि पूर्व दिशा को ले गये। गंगा देवी अल्प समय में ही अपनी गल्ती को जानकर भागीरथ का अनुसरण करके दक्षिणवाहिनी हो गई तब पद्मावती को अभिशाप दिया कि पद्मा के जल से किसी को भी मुक्ति नहीं मिल सकती। यह पद इस प्रकार है-

कान्डोरेर प्रति गंगा मुक्ति पद दिया।
गौड़ेर निकट गंगा मिलिल आसिया।।
पद्म नामे एक मुनि पूर्व मुखे जाय।
भगीरथ बलि गंगा पश्चात गोड़ाय।।
पूर्व दिके जाईते आमार नाहि पथ।।
पद्ममुनि लये गेल नाम पद्मावती।
भगीरथ संगेते चलिल भगीरथी।।
शापवाणी सुरघुनी दिलेन पद्मारे।
मुक्ति केह तब नीरे पावे ना संसारे।।

कृतिवास ने जिन पद्म मुनि का उल्लेख किया है वह हिन्दुओं के किसी देवता या ऋषि के लिये नहीं मिलता। लेकिन जैन तीर्थंकरों में पद्म प्रभु छठे तीर्थंकर है जिनका जन्म कौशम्बी में हुआ था और जिनका चिन्ह है लाल कमल। पद्मप्रभु बंगला देश में प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहे है। उनकी कई मूर्तियाँ जो इस क्षेत्र के विभिन्न जगहों से निकली है उनमें लाल कमल का चिन्ह अंकित है। एक दूसरी मान्यता के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती को बंगाल में मनसा के नाम से भी जाना जाता है। मनसा का नाम पद्मावती कैसे पड़ा इसका वर्णन पद्मपुराण में दिया हुआ है जिसके अनुसार कमल के वन में उत्पत्ति के

कारण नाम हुआ पद्मावती। मनसा नाम हुआ नागराज से। अर्थात् शिव कन्या मनसा का जन्म कमल के वन में हुआ था इसलिये मनसा पूर्व बंगाल में पद्मा के नाम से प्रसिद्ध थी। पहले ये सर्प देवी अनार्य लोगों द्वारा ही पूजी जाती थी और संभवतः उन्हीं के नाम से भागीरथी के पूर्व प्रवाह के पथ का नाम भी पद्मावती हुआ। धीरे-धीरे हिन्दू समाज ने भी उन्हें अपनाया। लेकिन फिर भी पद्मावती या पद्मानदी ब्राह्मणों की श्रद्धा-भक्ति अर्जन नहीं कर पायी और इसीलिए पद्मानदी को कीर्तिनाशा नदी माना गया है। जिस प्रकार सम्मेत शिखर का नाम पारसनाथ पहाड़ भगवान पार्श्वनाथ के नाम से पड़ा। वर्द्धमान, वीरभूमि आदि स्थानों के नाम भगवान महावीर की स्मृति से पड़े वैसे ही पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती बंगला देश में प्रसिद्धि के उच्च शिखर पर अवस्थित थी। इसी कारण यहाँ के आदिवासियों ने नदी का नाम उन्हीं के नाम पर पद्मा रखा। बंगाल के इतिहास के प्रो० श्री चितरंजन पाल ने अपने शोध लेख में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

पाश्चात्य विद्वानों के विवरणों और जैन ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि छोटा नागपुर के पार्श्वनाथ पर्वत के समीप के क्षेत्र में भगवान महावीर से पूर्व ही सराक जाति के लोगों ने यहाँ अपना निवास स्थापित किया था। भगवान महावीर ने अपनी साधना के छः वर्ष इसी क्षेत्र में बिताये थे।

श्री श्यामाचरण मुखोपाध्याय ने लिखा है कि जैन सूत्र ग्रन्थों (आचारांग सूत्र, भगवती सूत्र इत्यादि) से ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि महावीर से पहले भी जैन मुनि या सन्यासीगण धर्मप्रचार के उद्देश्य को लेकर या फिर किसी और कारण से इन अंचलों में आये थे। ऐसा लगता है कि ये सभी मुनि और सन्यासीगण महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनुगामी रहे हों। अगर यह अनुमान सत्य है, तो फिर यह

स्वीकार किया जा सकता है कि पार्श्वनाथ ने बर्द्धमान महावीर से पहले ही बंगाल में धर्मप्रचार किया था।

बंगाल सीमांत पर बसा सराक सम्प्रदाय

बहुत ही आश्चर्य की बात है कि इतिहासकार जानते हैं, कहते भी है और लिखते भी है कि यहाँ इस क्षेत्र में तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ आये थे, वर्द्धमान महावीर आये थे लेकिन उनके पास जो इतिहास है वह सातवीं शताब्दी से है। छः सौ ई० पू० से सातवीं सदी तक के ग्यारह सौ साल के इतिहास का किस प्रकार दोहन हुआ है इसका पता इन क्षेत्रों में जाने से वहाँ के लोगों की परंपराओं, रीति-रिवाजों को जानने से सहज ही अनुमानित किया जा सकता है। सातवीं शताब्दी तो पतन की शुरुआत थी शायद इसीलिए सप्तम शताब्दी से क्रमबद्ध इतिहास हमारे सामने है।

श्रेणिक बिम्बसार के राजत्व में बंगाल का अधिकतर क्षेत्र था जिसमें राढ़क्षेत्र भी आता था। Bimbisara, the first known imperial monareh of Magadha, conquered Anga and probably retained some form of control over Radha, included in Anga.

M.G. pg. 29

भगवान महावीर— भगवान महावीर के जीवन के प्रसंगों का परिचय विभिन्न ग्रन्थों से उपलब्ध होता है जिनमें कल्पसूत्र, भगवती सूत्र और आचारांग सूत्र प्रमुख है। कल्पसूत्र में राढ़ का उल्लेख न होकर पणितभूमि में वर्षावास करने का उल्लेख मिलता है। भगवती सूत्र के अनुसार वज्ज भूमि के पणिय भूमि क्षेत्र में भगवान महावीर ने छः वर्षावास व्यतीत किये थे। वीरभूम, वर्द्धमान आदि क्षेत्र आज भी उनके नाम की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखे हैं। आचारंग सूत्र के अनुसार महावीर ने राढ़ क्षेत्र की ऊसर भूमि में अनेक विपत्तियों का सामना किया था।

At the dawn of the history, part of the district as now constituted appears to have been included in the tract of the country known as 'Rarh' and part in the tract called 'Vajjabhumi' . The traditions of the Jainas state that Mahavira, their last great Tirthankara, wandered through these two tracts in the 5th Century, B.C.; and the description of them would seem to show that the eastern part of the district, with its alluvial soil, well watered by rivers, formed part of Rarh, while the wilder and more rugged country to the west was aptly known as Vajjabhumi, i.e., the country of Thunderbolt. Bengal Gazetteer

इतिहासकार आर. सी. मजुमदार ने भी लिखा है—

The first recorded contact of Bengal with Jainism was marred by incidents which reflect great discredit on her people. We learn from the *Acaranga Sutra* that when Mahavira wandered as a naked mendicant in Ladha (i.e., Radha or western part of undivided Bengal) through its two divisions known as Vajjabhumi and Subbhabhumi, he was attacked by the people who even went to the length of setting dogs upon him.

R.C. Majumdar.

आचारंग सूत्र के नवें अध्ययन के तृतीय उद्देशक में लिखा है-

अह दुच्चरं लाढमचारी वज्जभूमियं सुब्भभूमियं पंतं।
सिज्जं सेविंसु, आसणगणि चेब पंताणि।।२।।

अर्थात्–जहाँ विचरना बहुत ही कठिन है ऐसे लाढ़ देश की वज्र भूमि और शुभ्र भूमि इन दोनों प्रदेशों में भगवान विचरे थे। वहाँ अनेक उपद्रवों से युक्त सूने घर आदि में भगवान ने विश्राम लिया था।

लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लुसिंसु,
अह लूह दैसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थहिंसिंसुणि–वइंसु।।३।।

राढ़ देश में विचरते समय भगवान ने अनेकों उपसर्ग सहे थे। वहाँ के निवासी लोग भगवान को मारते थे, कुत्ते उन्हें काटते थे और उन पर टूट पड़ते थे।

णागो संगाम सीसे व पारए तत्थ से महावीरे
एवं वि तत्थ लाढेहिं अलद्धपुव्वो वि एगया गामो।।८।।

जैसे हाथी संग्राम के अग्रभाग में जाकर शत्रुओं के प्रहार की परवाह न करता हुआ शत्रु सेना को जीतकर उसको पार कर जाता है इसी तरह भगवान महावीर स्वामी ने भी राढ़ देश के परिग्रहों को जीतकर उस देश को पार किया था । कभी ठहरने के लिए ग्राम भी नहीं मिलता था तब वे जंगल में वृक्षादि के नीचे ठहर जाते थे।

आजीवक सम्प्रदाय के गोशालक ने भगवान महावीर के साथ इस प्रदेश में विचरण किया था। जिसका उल्लेख भगवती सूत्र में हमें मिलता है।

"तएणं से गोसाले मखलिपुत्ते हट्ठतुट्ठे ममं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं जाव णमंसित्ता एवं वयासी-तुज्झे णं भंते! मम धम्मायरिया, अहं पां तुज्झं अंतेवासी। तएणं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेमि। तएणं अहं गोयमा! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं पणियभूमीए छव्वासाइं लाभं अलाभं सुखं दुक्खं सक्कारम सक्कारं पच्चणुब्भवमाणे अणिच्चजागरियं विहरित्था।"

भगवती सूत्र १५, ५४३

अर्थात् : मंखलिपुत्र गोशालक ने प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोला– हे भगवन!

आप मेरे धर्माचार्य है और मैं आपका शिष्य हूँ। हे गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र गोशालक की उस बात को सुना (अर्थात् स्वीकार किया)। इसके पश्चात् हे गौतम! मैं मंखलिपुत्र गोशालक के साथ प्रणीत-भूमि में छः वर्ष लाभ-अलाभ, सुख-दुख, सत्कार-असत्कार का अनुभव करता हुआ और अनित्यता का चिन्तन करता हुआ विचरता रहा।

भारतीय इतिहासकार डॉ. रमेशचंद मजूमदार ने भी इस घटना का उल्लेख किया है।

The *Bhagavati Sutra* describes in detail how Gosala, after several unsuccessful attempts, was at last accepted as a disciple by Mahavira at a place called Paniyabhumi. The story, put in the mouth of Mahavira then proceeds : *aham.....gosalenam.....saddhim paniyabhumie chavva saim viharittha.* The normal meaning of the passage is that the two lived together at Paniyabhumi during the next six years. But this is in conflict with the statement in the *Kalpa Sutra* that Mahavira spent only one rainy season in Paniyabhumi. . . . As according to the persistent Jaina tradition Mahavira led a wandering life except during the rainy season, the expression in the 'Bhagavati Sutra' evidently means that Mahavira and Gosala fixed their headquarters at Paniyabhumie, wandering about from place to place during the year, as described in detail, year by year, by Jinadasa.

R.C. Mazumdar-Jainism in Ancient Bengal

भगवान महावीर ने अपनी तपस्या तथा साधना के लिये जिस क्षेत्र का चयन किया उस बंग भूमि के अंचल में भगवान महावीर के

जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटी थी। उन्होंने इस अंचल में साधना की। यहाँ के उपसर्गों को जीतकर इस क्षेत्र को अपनी अपरिसीम करुणा से अभिषिक्त किया था और यहाँ के आदिवासी लोक मानस को परिवर्तित करने में सफल हुए थे। यहीं उनका दर्शन विकसित हुआ। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्त। आत्मा की स्वतन्त्रता के दर्शन का उन्होंने जो प्रतिपादन किया और जिसके वे जीवन्त प्रतीक बने उसका प्रभाव सम्पूर्ण पूर्वी भारत में ही नहीं रहा बल्कि यहाँ से पूरे देश और विदेश में भी फैला।

दीक्षा लेने के उपरान्त भगवान महावीर देवघर (आज का बैजनाथ धाम) के समीप मोराक आश्रम के कुलपति के आग्रह से वहाँ पहला चातुर्मास बिताने के लिये आये। लेकिन पन्द्रह दिन के बाद उन्हें वहाँ से चला जाना पड़ा। और इस दौरान कठोर तप करने के कारण यह आश्रम एक पवित्र स्थान बन गया था। इस आश्रम के नीचे एक झरने से मयूराक्षी नदी निकली है। जामातोड़ के पास अजय नदी के किनारे चलते हुए देव दूश्य वस्त्र को फाड़कर उन्होंने सोम ब्राह्मण को दान में दे दिया। चलते-चलते प्रभु वीरभूम और वर्द्धमान जिलों की सीमा पर स्थित बोलपुर के निकट वर्द्धमान गाँव जिसे बाद में अस्थिक ग्राम कहा जाता है में आये और वहाँ शूलपाणी यक्ष के मंदिर में तीव्र तपस्या में लीन हो गये। शूलपाणी यक्ष ने प्रभु पर अनेकों उपसर्ग किये लेकिन अन्त में हारकर प्रभु की शरण में स्वयं को समर्पित किया। बाद में यही शूलपाणी यक्ष शूलपाणी शिव के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मंगलकोट से प्रभु अजयनदी पार करके बोलपुर आदि स्थान होते हुए सुवर्ण बालुका (मयूराक्षी) नदी के दक्षिण किनारे होते हुए सिद्धेश्वरी नदी पर पहुँचकर ध्यानमग्न हो गये। इस जगह का नाम तांतलोई पड़ा। यहाँ पर काले पत्थर की पार्श्वनाथ स्वामी की तीन फुट

ऊंची एक खंडित मूर्ति है जो पहले वीरेश्वर शिव के नाम से प्रसिद्ध थी। लेकिन अब तंतेश्वर शिव कही जाती हैं।

यहाँ से प्रभु ने कनकखल आश्रम (जोगी पहाड़ी) की तरफ विहार किया। यह परदेशी राजा की राजधानी सेयाबिया अर्थात् वर्तमान में सेथिया के पास था। यही उन पर चंडकौशिक सर्प का उपसर्ग हुआ। इस पहाड़ी के निकट में कौशिका नाम का गाँव था जिसे आज ऊषका कहते हैं। ऊषका गाँव के निवासी अपने यहाँ के प्राचीन इतिहास के बारे में चंडकौशिक वाली घटना आज भी सुनाते हैं। प्रभु ने नागसेन नामक एक गृहस्थ के घर निर्जल उपवास का पारणा किया था। पारणा में प्रभु को पायस (चावल की खीर) और चावल का पीठा (पिष्टक) मिला। ये दोनों खाद्य बंगाल में आज भी प्रचलित है। यहाँ राउतोड़ा में लालपत्थर के तीन कला मण्डित प्राचीन मंदिरों के अवशेष पाये जाते हैं। राउतोड़ा से विहार करते समय सोनारगोढ़े जो अभी अंगारगोढ़े कहलाता है, में प्रभु ने प्रवेश किया। डॉ० निहाररंजन राय ने अपनी पुस्तक 'बंगालीर प्राचीन इतिहास' में राढ़देश की सीमाएं बताते हुए लिखा है कि 'दामोदर नदी के उत्तर तट से लेकर मुंगेर तक 'उत्तर राढ़' (वज्रभूमि) और दामोदर नदी के दक्षिण तीर से लेकर तमलुक पूर्व बंगाल तक 'दक्षिण राढ़' कहलाता था। वज्रभूमि शब्द का प्राकृत रूप बइरभूमि से बीरभूमि और उसका अपभ्रंश बीरभूम'। राजप्रश्नीय सूत्र में इसी राढ़ देश को केकयाधं देश अर्थात् अर्ध आर्य अर्ध अनार्य देश कहा गया है। वहाँ के अनार्य शासक राजा परदेशी की राजधानी थी सेयंबिया (सैंथिया) नगरी। नगरी के उत्तर-पूर्व इशान कोण पर एक सुगंधित, शीतल छाया वाला रम्य नन्दनवन जैसा मृगवन नामक उद्यान था। सेयंबिया की सीमा वर्त्तमान कुडलाग्राम से लेकर ललियापुर बाजार तक फैली हुई थी। उसके पास ही ईशान कोण में कोचराजारदीघी

नामक एक बड़ा तालाब था। इसी मृगवन में श्रमण केशीकुमार आकर ठहरे थे और उनके धर्मोपदेश से प्रभावित परदेशी राजा का मन परिवर्तित हो गया। वह श्रावक धर्म का पालन करने लगा।

जब राजा परदेशी के कानों तक भगवान महावीर स्वामी के आगमन का सुसमाचार पहुंचा तो उसने तुरन्त अपनी सैन्य, सामन्तराज परिवार और पुरजनों को लेकर बड़े समारोह के साथ नगरी के बाहर आकर पांच अभिगमों से भगवान का स्वागत-वन्दन किया। भगवान के इस पवित्र पदार्पण की स्मृति में राज्य का नाम पलटकर भगवान के आदर सूचक नाम वीर प्रभु के अनुसार 'वीरभूमि' (वज्रभूमि) रखा गया, ऐसा भी कई विद्वान मानते हैं। वह स्थान जहाँ कि प्रभु का स्वागत किया गया था स्वर्णबालुका नदी के किनारे अमलकप्पा नाम से प्रसिद्ध था। आज वही स्थान अमुया नाम से जाना जाता है। एक अक्षय वट वृक्ष, जो कि वहाँ अब भी मौजूद है, लोग कहते है कि उनके पूर्वज कह गये हैं कि इस पेड़ के नीचे एक महान बालक सन्यासी बाबा का धूमधाम से स्वागत किया गया था और उस वृक्ष के मूल पर २$^{१}/_{२}$ फावड़ा मिट्टी प्रत्येक ग्रामवासी हर साल डाला करते थे। नदी के किनारे निम्न भूमि पर बसे हुए इस गाँव में आज तक बाढ़ का पानी कभी नहीं घुसा। पुण्य वृक्ष के मूल पर मिट्टी चढ़ाने का यह सुपरिणाम है, ऐसी जनसाधारण की मान्यता है।

प्रभु ने सेयंबिया से बिहार किया। रास्ते में परदेशी राजा के अधीन पाँच नेयक चक्रयुक्त राजा, जो कि परदेशी राजा से मिलने के लिये चार चक्के के रथ पर सवार होकर उस समय आ रहे थे उन्होंने प्रभु को देखा और तुरन्त रथ से उतर कर प्रभु का पाँच अभिगमों के साथ स्वागत वन्दन किया। यह स्थान बाद में तीर्थ माना जाने लगा और इसका नाम वीरचन्द्रपुर रखा गया। इन राजाओं के राज्य बारह-बारह

कोस फैले हुए थे। जिस परिधि को चक्र कहा जाता था उसी से एकचक्रा नाम उत्पन्न हुआ। एकचक्रा तथा वीरचन्द्रपुर दोनों स्थान आज वैष्णव तीर्थ में परिवर्तित हो गये हैं।

वीरचन्द्रपुर से राजगाँव मार्ग पकड़कर प्रभु ने राजगृह जाने के लिए विहार किया। जैसा कि 'वीरभूम विवरण' नामक पुस्तक में कहा गया है कि वीरभूम और विहार सीमान्त पर राजगाँव, जोगीगुफा और वैष्णवडांगा के पास गंगा नदी बहती थी। नदी को पार करने के लिए प्रभु नाव पर बैठे तो नाव डूबने का उपसर्ग सहना पड़ा। नदी का बहाव उस स्थान पर मिट्टी से रुक जाने के कारण अब तो वहाँ एक विशाल जलाशय दिखाई देता है जो कि बरसात में गंगा नदी से मिल जाता है। उपसर्ग स्थली होने के कारण उस स्थान का महत्व बढ़ गया और वीरप्रभु के नामानुसार उस जलाशय का नाम तपस्वीबिल हो गया। उपसर्ग को सहकर प्रभु नदी के (तपस्वीबिल) उस पार उतरे और चलने लगे। थोड़ी देर के बाद ही पुष्पक नामक एक व्यक्ति जो कि सामुद्रिक ज्योतिष का विद्वान था उसी पार आ पहुँचा। नदी के किनारे महीन धूल पर प्रभु के चक्र, ध्वजा, मंगलकलश आदि दुर्लभ चिह्नयुक्त चरण की छाप देखकर आश्चर्यचकित हो गया। अपनी विद्या द्वारा पुष्पक ने यह जान लिया कि ये चिन्ह कोई मामूली व्यक्ति के नहीं हैं अवश्य कोई चक्रवर्ती राजा के होंगे। उसने सोचा कि ऐसा महान् पुरुष जो कि अब निस्संग प्रतीत होता हैं, के साथ रहने से अपनी दरिद्रता सदा के लिए मिट जायगी। चिन्हों को देखते देखते वह उनको पकड़ने के लिए आगे बढ़ा और एक अपरिग्रह सन्यासी को पाकर निराश हुआ। अपनी विद्या को निष्फल मानकर वह सारी पुस्तकों को पानी में फेंकने गया ही था कि शकेन्द्र का आविर्भाव हुआ और उन्होंने सन्यासी का यथार्थ परिचय देकर पुष्पक को वैसा करने से रोका और धनरत्न देकर उसकी मनोकामना पूरी की। प्रभु को पकड़ने की चेष्टा के

कारण इस स्थान (थुनाक सन्निवेश) का नाम पाकुड़ रखा गया। प्रभु यहाँ से चल पड़े और सुरभिपुर (साहिबगंज) तथा मोराख आश्रम के निकट मोहनतोड़ होते हुए दूसरे चातुर्मास के लिए राजगृह पहुँचे।

तीसरा चातुर्मास प्रभु का चम्पापुरी में बीता। इसके बाद प्रभु ने फिर राढ़भूमि की ओर विहार किया। साथी गोशालक के साथ प्रभु कुमारगांव या कुमोरपुर (कुमारिक सन्निवेश) आ पधारे। गाँव के बाहर निर्जन रमणीक चम्पक उद्यान में महावीर प्रभु ने कायोत्सर्ग तप किया। यहाँ से दोनों चुरिच्या गाँव की ओर चले। इस स्थान का प्राचीन नाम चौराकसन्निवेश था। प्रभु और गोशालक को गुप्तचर समझकर पहरेदारों ने कैदकर लिया और थानेदार ने उन्हें बिना देखे ही हाथ-पाँव बाँध कर गड्ढे में गिराने का दण्ड दिया। यही स्थान सन्यासी की शूली नाम से परिचित है। उसी समय संयोग से गड्ढे के पास से पार्श्वनाथ परम्परा की सीमा और जयन्ती नाम की दो वृद्धा साध्वियाँ जा रही थी। प्रभु को देखकर उनकी आखों से आँसू की धारा बहने लगी। साध्वियों ने थानेदार को प्रभु और गोशालक का यथार्थ परिचय देकर उन्हें तुरन्त मुक्त कराया। थानेदार ने लज्जित होकर प्रभु से क्षमा मांगी। आँसू की धारा बहने की घटना के अनुसार इस स्थान का नाम आज तक 'बूड़ी झूरी' झरना है। इस झरने के पानी में एक अलौकिक गुण भी है। लोग लगातार रोते हुए बच्चों की आँखे इस झरने के पानी से धोकर उन्हें शान्त करते हैं।

वीरभूमि में ऐसे बहुत से और स्थान है जो कि वीर प्रभु के साधनाकाल की स्मृति दिलाते हैं। इस क्षेत्र का नाम प्रभु के नाम से ही वीरभूम पड़ा है।

वर्त्तमान बिहार का संथाल परगना, धनबाद, सिंहभूमि, हजारीबाग और मुंगेर जिले के कियदंश पर्यन्त राढ़ देश विस्तृत था। आचारांग सूत्र ने इसी राढ़ देश को वज्जभूमि और सुम्हभूमि इन दो भागों में विभक्त

किया है। अर्थात् आचारांग सूत्रकार के समय राढ़ देश का दक्षिण और उत्तर अंश वज्जभूमि और सुम्हभूमि नाम से परिचित था। चीनी परिव्राजक ह्वेनसांग ने इस वज्ज (विज्ज) भूमि का उल्लेख किया है। बहुत लोगों का मत है इस अंचल में हीरा (वज्र) या अच्छा कोयार्टज पाया जाता था। इसी से इसका नाम था वज्रभूमि या वज्जभूमि हुआ। यही वज्जभूमि-वीरभूमि ने भगवान महावीर की विचरण भूमि होने का सौभाग्य धारण कर उनके पाद-स्पर्शों से पवित्र होकर अब तक वीरभूमि नाम से स्वयं को पुण्य और धन्य कर रखा है।

आज की जोगी पहाड़ी

कल्पसूत्र में उल्लेख है कि भगवान महावीर ने एक वर्षावास पण्यभूमि में किया था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासे वासावासं उवागए। चंपं च पिट्ठिचंपं च नीसाए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए। वेसालिं नर्गारं वाणियगामं च नीसाए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए। रायगिहं नगरं नालंदं च बाहिरियं नीसाए चोद्दस अंतरावासे वासावसं उवागए। छ मिहिलिया, दो भद्दियाए, एगं आलभियाए, एगं सावत्थीए, (एगं पणीय-भूमीए,) एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रण्णो रज्जूसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए ।।१२२।। — कल्पसूत्र

अर्थात् : 'उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर ने अस्थिक ग्राम में प्रथम वर्षावास-चातुर्मास किया। चम्पानगरी और पृष्ठचम्पा में भगवान् ने तीन चातुर्मास किये। वैशाली नगरी और वाणिज्य ग्राम में भगवान् ने बारह चातुर्मास किये। राजगृह नगरी में और उसके बाहर नालिन्दपाठक (नालन्दा) की निश्रा में भगवान ने चौदह चातुर्मास किये। छह मिथिला नगरी में, दो भद्रिका नगरी में, एक

प्रणीतभूमि नामक अनार्यदेश में चातुर्मास किया और एक अन्तिम चातुर्मास करने के लिये भगवान् मध्यमपापा के राजा हस्तिपाल की रज्जुकसभा में आए।'

यह पणित भूमि कहाँ पर है इस विषय में श्री हरिप्रसाद तिवारी और नृसिंह प्रसाद तिवारी की गवेषणा महत्वपूर्ण है।

उन्होंने लाढ़ और पणिय भूमि एक ही अंचल है या पणियभूमि लाढ़ के किसी अंश का नाम है इस धारणा का सम्बल लेकर उन्होंने पणियभूमि की खोज इसी वज्जभूमि और सुम्ह भूमि के मध्यवर्ती अंचल में आरम्भ की। समस्त रेवेन्यु सेटलमेन्ट रेकार्ड देखा, किन्तु पणियभूमि का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ। इसके बाद जियोलॉजिकल सर्वे डिपार्टमेन्ट के समस्त प्राचीन रेकार्ड के अनुसंधान करने पर उन्हें वहाँ पणियभूमि का संधान मिला।

अजय नदी के तटवर्ती वर्त्तमान वीरभूमि के सन्निहित वर्द्धमान जिले के कोयला क्षेत्र के एक कोयला स्तर का नाम पनियाति कोयला स्तर है। यह केवल जियोलॉजिकल सर्वे के कागजों में ही आबद्ध नहीं है, स्थानीय मनुष्य आज भी इस अंचल को पनियाति कहकर अभिहित करते हैं। इस इलाके की एक कोयला खान और एक वर्क शाप का नाम भी पनियाति है। भारतवर्ष के विभिन्न कोयला स्तरों के विभिन्न नाम हैं। प्रत्येक कोयला स्तर का नामकरण हुआ है जिस स्थान से कोयला स्तर आरम्भ होता है उसी स्थान के गाँव के नाम पर। किन्तु पनियाति नामक कोई गाँव अथवा मौजा वर्त्तमान में नहीं है। इसी से लगता है इस क्षेत्र में अंचल के नाम पर यह नामकरण हुआ है एवं अंचल के नाम पर कोयला स्तर का नाम रखा गया है पनियाति कोयला स्तर।

अजय उपत्यका में जो केवल एक कोयला स्तर का नाम लिए टिकी हुई है वह पणियभूमि अथवा पनितभूमि अंचल एक समय पश्चिम

मुंगेर पर्यन्त विस्तृत था। इसी अंचल में आज भी प्राचीन श्रावकों के वंशज पीढ़ी दर पीढ़ी रहते आ रहे हैं। राढ़ देश की वज्जभूमि के इस पनियाति या पणियभूमि को केन्द्र कर भगवान महावीर ने अपने साधनाकाल के छः वर्ष व्यतीत किए थे और इसी अंचल के किसी स्थान पर उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त किया था।

तिवारी बन्धुओं के अनुसार भगवान महावीर का केवलज्ञान का स्थान भी इसी क्षेत्र में था। कल्पसूत्र में भगवान के केवल ज्ञान का स्थान का वर्णन दिया हुआ है।

> तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वाएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उजुवालियाए नईए तीरे वेयावत्तस्स चेईयस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालपायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कुडुयनिसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणं तरियाए वट्टमाणस्स अणंते अनुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने।।१२०।।
>
> – कल्पसूत्र

अर्थात् : तेरहवें वर्ष के मध्यभाग में जब ग्रीष्म ऋतु का दूसरा महीना, चौथा पक्ष वैशाख शुक्ल चल रहा था तब उस वैशाख शुक्ल दशमी के दिन, जब छाया पूर्व दिशा की तरफ ढलने लगी थी, प्रमाणोपेत पौरुषी आ गई थी, उस समय सुव्रत नामक दिवस में, विजय मुहूर्त में, जृम्भिका

नामक ग्राम के बाहर, ऋजुवालिका नदी के किनारे, जीर्णाद्धार योग्य चैत्य से न अत्यधिक दूर और न अत्यधिक निकट, श्यामाक नामक गृहपति के खेत में, शालवृक्ष के नीचे, गोदोहिका आसन से उत्कट रूप में बैठे हुए, आतापना द्वारा तप करते हुए, निर्जल छट्ठभक्त–दो उपवास किये हुए, ध्यानमग्न भगवान को हस्तोत्तरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र का योग आने पर अनन्त, सर्वोत्कृष्ट, व्याघात रहित, आवरण रहित, समग्र व परिपूर्ण ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

कल्पसूत्रकार ने भगवान महावीर के केवलज्ञान के स्थान का निर्देश बहुत ही स्पष्ट रूप में दिया है जिस पर गवेषणा करते हुए श्री हरिप्रसाद तिवारी ने लिखा है—

"भगवान महावीर राढ़ देश की वज्जभूमि-पणियभूमि अंचल में परिभ्रमणस्त अवस्था में सिद्ध हुए थे। उसी कारण निश्चित रूप से बोला जा सकता है ऋजुपालिका नदी उस अंचल में ही प्रवाहित होती थी एवं वह अंचल मालभूमि की सख्त मिट्टी से बना हुआ था। अतः ऋजुपालिका के गतिपथ की परिवर्तन की संभावना अत्यन्त कम है। ऋजुपालिका अब भी प्रवाहित हो रही है अपने वहीं चिर पुराने पथ पर, केवल नाम परिवर्तन कर। प्राचीनकाल में एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिये विशेष कर पैदल जाने के दो प्रकार के पथ-निर्देशक रहते थे। एक राजपथ दूसरा नदी पथ। राजपथ से साधारणतः सैन्य सामन्त और सार्थवाह, श्रेष्ठीगण यातायात करते थे। नदी पथ से जलयान द्वारा जाना नहीं है बल्कि नदी को पथ निर्देशिका के रूप में रखकर उसके किनारे से या समीप के अंचल से जाना है। इसी प्रकार के नदी पथ ही तीर्थयात्रियों और साधु-संन्यासियों के लिए सुविधाजनक थे। कारण इससे प्रथम तो राजपथ की भीड़ और दण्डधरों की अवांछित पूछ-ताछ टल जाती थीं। दूसरे राह चलते जल का कष्ट भी टल जाता। तीसरे

में राह भूलने की भी चिन्ता नहीं रहती। चतुर्थतः साधना-भजन भी निश्चिन्तता से होता। भगवान महावीर जब नालन्दा से दुर्गम वज्जभूमि अंचल में आते तब वे भी निश्चय ही राजपथ की भीड़ को टालने के लिए किसी नदी पथ का अवलम्बन कर ही आते और उस नदी का नाम ऋजुपालिका होना ही स्वाभावित है। भगवान के पणियभूमि व राढ़ पर्यटन के समय जिन समस्त ग्राम-नगरों का परिचय प्राचीन जैन ग्रन्थों में मिलता है उनका भी इसी नदी के समीप होना ही उचित है और नदी का उत्स भी नालन्दा के समीप होना चाहिए।

अनुसन्धान कर देखने से पता चलता है वर्त्तमान अजय नदी ही वह पुण्यसलिला ऋजुवालिका या ऋजुपालिका हैं। भगवान वज्जभूमि के जिन स्थानों से होकर परिभ्रमण करते थे उन सभी के निकट से अजय नदी प्रवाहित होती हैं विशेषकर जहाँ यह मालभूमि की बंजर और उबड़-खाबड़ अंचल से होकर बहती है। यह बात हमें सब समय स्मरण रखनी होगी कि भगवान कर्मक्षेत्र करने के लिए ही इस दुर्गम भूमि में आते थे, समतल शष्य-श्यामल अंचल में सुखपूर्वक जीवनयापन करने नहीं। भगवती सूत्र के अनुसार उन्होंने ६ वर्ष इसी पणियभूमि अंचल में परिभ्रमण किया था। अतः उनका केवल ज्ञान प्राप्ति का क्षेत्र अजय नदी के तटवर्ती मालभूमि अंचल ही होगा समतल भूमि नहीं।

अजय नदी जहाँ बिहार छोड़कर पश्चिम बंग में प्रवेश करती है वहाँ एक ग्राम मिलता है–नाम है चिचुरविल (संथाल परगना) वहाँ से तीन मील नीचे (पूर्व में) नदी के दूसरे पार में एक और गाँव है। उसका नाम भी है चिचुरविल (वर्धमान)। ऐसा भी नहीं है कि अजय नदी ने दोनों गाँवों को दो भागों में बाँटा है। कारण दोनों ही गाँवों की विपरीत दिशा में अन्य ग्राम वर्त्तमान है और दोनों ही चिचुरविलों की यथेष्ट दूरी है। दोनों ही चिचुरविल गाँवों में अजय नदी के बिल वर्त्तमान है एवं वर्षाकाल में अजय

नदी के जल में दोनों बिल जलपूर्ण हो जाते है और वर्ष भर इनमें जल रहता है। इस चिचुरविल शब्द की रचना हुई है ऋजुरविल से अर्थात् ऋजुनदी के विल से। दोनों ही ऋजु के बिल क्रमशः चिचुरविल में परिवर्तित हो गए है। ऋजुरविल चिजुर विल चिचुरविल। विल शब्द का अर्थ है गर्त्त या निम्न भूमि जहाँ जल-निकास की प्रणाली नहीं है। अतः ऋजुपालिका का नाम बदल जाने पर भी नदी तटवर्ती दो-चार गाँव और नदी संलग्न विल कितने ही परिवर्तनों के झंझावातों से गुजरने पर भी ऋजुपालिका नदी के नाम की साक्षी दे रहे हैं।

भाषागत विवेचना में यह देखने को मिलता है कि साधारणजन मानस 'ऋ' का उच्चारण 'उ' करता था। जैसे 'ऋषभ' का नाम 'उसभ' या 'उसह' अनेकों जगहों पर मिलता है। उसी प्रकार संस्कृत के 'ऋजु' को प्राकृत में 'उजु' कहा जाने लगा। बंगाल के गांवों में 'ऋ' की जगह 'उ' का उच्चारण बहुत ही साधारण बात है। आज भी गांव वासी रामपुर हाट को चलती भाषा में आमपुर हाट बोलते हैं। अतः ऋजु से उजु और उजु से अज तथा अज से अजय नाम आना स्वाभाविक है।

कल्पसूत्रकार इसी नगर के सापेक्ष में सिद्धभूमि का निर्देश करते हैं। कल्पसूत्र में वर्णित जम्भीयग्राम छोटा गाँव मात्र नहीं है। राढ़ देश की वज्जभूमि व पणियभूमि के शुष्क प्रान्त में ऋजुपालिका के समीप ही इसका अवस्थान होना चाहिए।

अजय उपत्यका में ही पनियाति अथवा पणियभूमि पर पाया जाता है जम्भीयग्राम, वर्त्तमान का जाम ग्राम, ऋजुपालिका (अजय नदी) के सन्निकट गढ़ दिगम्बर (गढ़देमो) पहाड़ की तलहटी में। ऋजुरविल (चिचुरविल) गाँव के चार मील पश्चिम में अवस्थित है। वस्तुतः जाम ग्राम की तुलना अभी भी नगर से की जा सकती है। आयतन से, विभिन्न

सम्प्रदायों की बस्तियों से एवं विभिन्न मोहल्लों के समाहार से और प्राचीनत्व के कारण जाम ग्राम को नगर कहना ही समीचीन है। गाँव को देखने पर अब भी प्रथमतः चार पाँच गाँव का भ्रम होने लगता है और इसके एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले की दूरी प्रायः १ से २ कि. मी. है। गाँवों का आयतन भी प्रायः १५-३० वर्ग किलो मीटर है और इतना बड़ा मौंजा इन अंचलों में विरल है। गाँव के उत्तर में एक प्राचीन मन्दिर (देवता विहीन) है और दूसरे मन्दिर के ध्वंसावशेष साक्षी देते है जाम ग्राम के पुरातत्व का। इस ध्वंसावशेष के ऊपर थोड़े दिन पहले ग्राम के किसी निवासी ने एक मंजिला छोटा शिव-मन्दिर बनाया है। मन्दिर में एक शिव-लिंग है, नाम है सिद्धिनाथ। शिवलिंग साधारण शिवलिंग सा नहीं है कुछ भिन्न है।

परित्यक्त मन्दिर की आभ्यंतरिक दीवारों पर शिलालेख अभी भी वर्त्तमान है। उसे पढ़ने का प्रयास किया जा रहा है फिर भी परित्यक्त मन्दिरों की गठन शैली उसके प्राचीनत्व का प्रमाण दे रही है। दूसरा मन्दिर जिसके ध्वंसावशेष पर नवीन मन्दिर निर्मित हुआ है वहीं वैयावृत्त चैत्य है।

जंभीयग्राम से इस मन्दिर को मिलाने वाली कल्पित सरल रेखा के साथ साथ उत्तर में आगे बढ़ने पर सामाग का कृषि क्षेत्र और उजूवालिया नदी होनी चाहिए जो है भी। इस मन्दिर से मात्र ५० गज उत्तर की ओर बढ़ने पर दिखायी देती है उजूवालिया की उज्ज्वल बालुकाराशि जो कि रजत-स्त्रोत सी दिशाओं को उज्ज्वल कर रही है। जंभीयग्राम (वर्त्तमान जाम ग्राम), के उत्तरी परित्यक मन्दिर से नदी की दूरी प्रायः एक-डेढ़ मील है। एक समय यह नदी गढ़ दिगम्बर पहाड़ के सन्निकट से प्रवाहित होती थी यह पहाड़ के उत्तरी पार्श्व की खड़ी ऊँचाई को देखकर ही समझा जा सकता है। वर्त्तमान में नदी अपने उत्तर दिशा

के विलों को ग्रास कर और भी उत्तर की ओर सरक गयी है। इस मन्दिर और नदी के मध्यवर्ती इलाके का नाम है सामापुर। यहाँ कोई ग्राम नहीं है, मात्र कृषिक्षेत्र है। संथाल जाति ने इस अंचल में प्रवेश किया था केवल ३००-४०० वर्ष पहले ही। यह कृषिक्षेत्र इसके पहले भी वर्त्तमान था। किन्तु मनुष्यों का निवास स्थान नहीं था। अतः सामाग का कृषिक्षेत्र सामापुर का नाम लेकर अभी भी वर्त्तमान है।

इतिहास के अनुसार १२वीं शताब्दी में अजय पाल नामक एक विद्वेषी राजा था उसने अनेकों जैन मन्दिरों तथा स्थानों को नष्ट किया था। राजा अजय पाल की धर्मान्धता के चिन्हस्वरूप अब भी देखने को मिलती है अजयतट पर धर्मशीला (धर्मशीला किन्तु धर्म ठाकुर नहीं) के शिला-प्रांगल में पशुबलि। गढ़ दिगम्बरपुर (गढ़देमो) शीर्ष के विशाल समतल प्रांगण में कुण्डेश्वर (भगवान महावीर) का भग्न सिंह-लांछन के सम्मुख (वर्त्तमान में काण्डेश्वर शिव) पशुबलि। उपत्यका के इलाके में अजय के दोनों तट पर पंचबलि की बहुलता है— चाहे कोई देवता रहें या न रहें। असल में जैन धर्म स्थानों पर राजा अजय पाल का विद्वेष ही इसका कारण है यह समझा जा सकता है।

इस अत्याचार के फलस्वरूप धीरे-धीरे इस दुर्गम अंचल के जैन तीर्थ के साथ श्रमण व श्रावकों का संयोग वियुक्त हो गया। पवित्र केवलज्ञान स्थान व अन्य तीर्थ विस्मृति के अतल में खो गए। कुछ कुछ स्थानों पर अवश्य ही भगवान महावीर ब्राह्मण समाज के रक्षणावेक्षण में भैरव नाम से अब भी पूजे जाते हैं।

तित्थयर सराक विशेषांक

गोशालक की तेजोलेश्या से दग्ध हुए सर्वानुभूति अनगार इसी क्षेत्र के निवासी थे ऐसा भगवती सूत्र में उल्लिखित है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूई णामं अणगारे पगइभद्दए, जाव चिणीय, धम्माय रियाणुरागेणं एयभट्ठं असद्दहमाणे उठ्ठाए उट्ठेइ, उ० २ उट्ठित्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, ते० २ गच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी- जे वि ताव गोसाला... तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूहं अणगारं तवेणं तेपणं एगाहच्च कुडाहच्च भासरासिं करित्ता दोच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, जाव सुहं णत्थि।

–भग० श १५/प्र १०४ १०६ पृ० ६८१

अर्थात् : उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पूर्व देश में उत्पन्न सर्वानुभूति अनगार था। जो प्रकृति का भद्र और विनीत था। वह अपने धर्माचार्य के अनुराग से गोशालक की बात पर श्रद्धा न करता हुआ उठा और गोशालक के पास जाकर इस प्रकार कहने लगा- हे गोशालक ! ... सर्वानुभूति अनगार की बात सुनकर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ—और अपने तपतेज के द्वारा एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अनगार को जलाकर भस्म कर दिया।

जैन साहित्य में कोटिवर्ष के किरातराज का वर्णन मिलता है जिसमें भगवान महावीर के समय बंगाल के कोटिवर्ष के राजा किरात राज वर्णिक जिनदेव के साथ मूल्यवान रत्नों की खोज में साकेत आते है जहाँ भगवान का प्रवचन चल रहा है। वे भगवान का प्रवचन सुनने जाते हैं। भगवान कह रहे हैं संसार में रत्न दो प्रकार के होते हैं भावरत्न और द्रव्यरत्न। सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान, और सम्यक् चारित्र अर्थात् तत्व श्रद्धा, तत्व का ज्ञान और उसके अनुकूल आचरण भाव रत्न हैं। द्रव्य रत्न कितने ही बहुमूल्य क्यों न हो उनका प्रभाव इसी भव तक सीमित है लेकिन भावरत्न का प्रभाव असीम है, भव भवान्तर में भी फल देता है। किरात राज भगवान का प्रवचन सुन भगवान से भाव रत्न

देने का आग्रह करते है और अपने धन, रत्न, राज्य, ऐश्वर्य का त्याग कर प्रवज्या ले लेते हैं।

आवश्यक हरिभद्रीयवृति प० ७१५-७१६

यह कोटिवर्ष कहाँ था इसके विषय में प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता पन्यास श्री कल्याण विजयजी महाराज ने लिखा है कि मुर्शिदाबाद जिला के भागीरथी के दक्षिण तट पर आज जहाँ रांगामती नगर है सातवीं शताब्दी में यह बंगाल की राजधानी कर्ण सुवर्ण था। भगवान महावीर के समय में यह कर्ण सुवर्ण ही कोटिवर्ष के नाम से प्रसिद्ध था जो राढ़ देश की राजधानी थी। जैन साहित्य में राढ़ की गणना साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की गई है। विविध तीर्थ कल्प में बंगाल के प्रमुख तीर्थों में कोटिवर्ष का उल्लेख मिलता है। टौलमी ने भी किरात लोगों का वर्णन किया है और चतुरग्राम यानि चट्टगांव में किरातजाति का प्रभाव बताया। उसने किरातजाति को बंगाल में फैली हुई जातियों में सबसे प्राचीन और सबसे अधिक संख्या में बताया है।

"The Kirrhadia of Ptolemy, a country mentioned also in the *Periplus* as lying west from the mouths of the Ganges and the Skyritai of Megasthenes are cantons of Kirata, one of the branches of the aboriginal race the widest spread in Gangetic India, and the most anciently known."

Ancient India

विभिन्न इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न समय में किरात जाति को भिन्न भिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित बताया है। रामायण के अनुसार—

The Kiratas with their hair down up in knots, shining like gold and pleasant to look upon, bold enough to move under water, terrible, veritable tiger-men, so are they famed.

Eastern Himalayan Culture

जियागंज का कीरत बाग का मंदिर व दादावाड़ी का स्थान जो पहले अजीमगंज में था गंगा के कटाव के कारण यह पानी में चला गया और दूसरे छोर जियागंज की तरफ निकला। अपनी पुरानी पहचान को जीवन्त रखने के लिये आज भी यह किरातबाग (कीरतबाग) का मंदिर कहलाता है।

अजीमगंज, जीयागंज आदि स्थान भगवान महावीर के समय में कोटिवर्ष में सम्मिलित थे। इसीलिए कोटिवर्ष तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। जिसका अस्तित्व चौथीं शताब्दी तक रहा। नेपाल राजा के गुरु श्री हेमचन्द्र शर्मा ने अपनी सुलिखित काश्यप संहिता की भूमिका के १३३ पृष्ठ भूमि में लिखा है कि कोटिवर्ष हुआ वर्तमान कटवा जो मुर्शिदाबाद के करीब है। यहाँ पर आज भी एक ऐसी जाति निवास करती है जो रात को खाना नहीं खाती, जमीकंद व्यवहार नहीं करती, उनके रीति-रिवाज श्रमण संस्कृति के समान है।

भागीरथी के तटपर प्राचीन नगरों और मंदिरों के ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं। स्थानीय लोगों को भागीरथी में स्नान के लिए डुबकी लगाने पर पानी के तल से मूर्तियाँ मिलती रहती है। हमारे परिवार के सदस्यों को भी मूर्तियां मिली थी। उस क्षेत्र में कुछ लोगों का यह व्यवसाय बन गया था कि प्राचीन मूर्तियों को विदेशों में अच्छे दामों में प्रचार कर देना। ऐसा करके उन्होंने अपने देश के प्राचीन गौरव को नष्ट किया है जो एक अपराध है।

इसी क्षेत्र में अजीमगंज के पास किरीटेश्वर है। मुर्शिदाबाद शहर के विपरीत दिशा में भागीरथी के पश्चिमी तट पर डाहापाड़ा है जो किसी समय अनेक भवनों से सुसज्जित नगर था तथा मुर्शिदाबाद राजधानी के अन्तर्गत था। इसी के सात कोस पश्चिम में किरीटकोन नाम का गांव अवस्थित है जो वास्तव में तीरथकोन था। मेजर रेनेलर

ने कासिमबाजार द्वीप के मानचित्र में भी इसको तीरथकोन लिखा है। जिस प्रकार कर्ण सुवर्ण काना-सोना कहा जाने लगा उसी प्रकार ये तीरथ कोना कहा जाने लगा। आज यहाँ पर घने जंगल तथा अनेक प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष है जो यहां किरात जाति के प्राचीन गौरव कोटिवर्ष तीर्थ की स्मृति को जीवित रखे हैं। मूल मंदिर के पास दो मंदिर और भी है जहाँ तीर्थंकर मूर्ति भैरव के रूप में पूजी जाती है। 'तंत्र चूड़ामणि पीठ निर्णय' में किरीटेश्वर देव का नाम विमला लिखा है। जबकि ये मंदिर विमला का नहीं होकर तेरवें तीर्थंकर विमलनाथ का मंदिर था। किरि का अर्थ है वरहा या सुअर जो तीर्थंकर विमलनाथ का लंछन है। अतः किरीटेश्वर हुए तेरवें तीर्थंकर श्री श्रीविमलनाथ स्वामी। यह मंदिर गुप्तकाल तक अक्षुण्य रहा। ब्राह्मणों का वर्चस्व बढ़ने के बाद इसके मूल स्वरूप को नष्ट कर नया महात्मय बनाकर प्रचार किया गया और धीरे धीरे सातवीं शताब्दी में शशांक के शासनकाल में जब जैनियों को यहां से पलायन करना पड़ा उस समय पूर्णरूप से यह तीर्थ ब्राह्मणों के वर्चस्व में आ गये। आज भी बंगाल में अनेकों जगहों पर जैन मूर्तियाँ देवियों के रूप में और भैरव के रूप में पूजी जाती है जिसका उल्लेख हम आगे जाकर करेंगे।

प्राचीन बौद्ध साहित्य में अंग, बंग, कलिंग में गौतम बुद्ध धर्म प्रचार के लिये बंगाल में आये थे ऐसा कोई उल्लेख नहीं है लेकिन बौद्धसाहित्य दिव्यदान तथा आशोकावदान में एक आख्यान मिलता है कि गौतमबुद्ध अपने शिष्य अनाथपिण्डक की पुत्री सुमंगधा के निवेदन पर उसके ससुर गृह को निर्ग्रन्थों के चंगुल से बचाने के लिये आकाशमार्ग से पुण्ड्रवर्धन आये थे। इस आख्यान का कोई एतिहासिक महत्व नहीं है फिर भी यह पांचवीं और छठी ई. पू. में पुण्ड्रवर्धन में निर्ग्रन्थों के प्रभाव की पुष्टि करता है।

In the *Divyavadana* and the *Asokavadana,* there is a legend which states that the Buddha, on an urgent request of Sumagadha, daughter of Anathapindaka, the merchant disciple of the Buddha arrived at Pundravardhana by an aerial route to rescue her father-in-law's family from the evil influence of the sky-clad Nirgranthas (Jainas) who were then most powerful in Pundravardhan.

R.L. Mitra., Nepalese Buddhist Tradition, p. 237.

पार्जिटर साहब के मत से पुण्ड्र और पौण्ड्र भिन्न हैं। पुण्ड्र है गंगा के उत्तर में। पौण्ड्र देश गंगा के दक्षिण में वर्तमान वीरभूमि जिले में।

भगवान महावीर इस क्षेत्र में एक बार नहीं कई बार आये थे ऐसा वर्णन जैन साहित्य में मिलता है। भगवती सूत्र में जिन १६ जनपदों का वर्णन है उनमें अंग, बंग तथा कलिंग सर्वोपरि हैं।

The Jaina literature from earliest times shows deep knowledge and intimacy of Bengal. Thus, among other instances, the *Bhagavati Sutra* mentions Vanga as one of the 16 important principalities, the Mahajanapadas, which flourished in India during the advent of Mahavira in the 6th century B.C.

प्रज्ञापना नामक पंचम उपांग में भारत वर्ष के आर्य अधिवासियों को नौ भागों में बाँटा गया है जिनमें क्षत्रियों का उल्लेख करते हुए प्रथम अंग द्वितीय बंग तृतीय कलिंग तथा चतुर्थ राढ़ क्षेत्र का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण वैदिक साहित्य में इन क्षेत्रों को अनार्य घोषित किया गया है क्यों कि यहाँ के निवासी जैन धर्मानुयायी व्रात्य क्षत्रिय थे। बौद्ध साहित्य में भी इन क्षेत्रों की उपेक्षा की गयी है। जब कि जैन साहित्य में इन क्षेत्रों को आर्य क्षेत्र माना गया है। वास्तव में देखा जाए तो इन

क्षेत्रों के आर्याकरण में भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर एवं उनके शिष्य-प्रशिष्यों का बहुत बड़ा हाथ रहा। वर्द्धमान और वीरभूम जिले का नामकरण तीर्थंकर भगवान महावीर के नाम से ही हुआ है।

'Sir R.G. Bhandarkar, the doyen of Indian Indologists, was of the opinion that Bengal was brought within the Aryan fold as a result of the Proselytising activities of Mahavira, the last Tirthankara of Jainism and other Jainas.'

भगवान महावीर के पूर्व भी ताम्रलिप्त बंगाल का एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था जहां से मगध साम्राज्य का सारा व्यापार अन्य देशों के साथ होता था। भगवती सूत्र में अनेक जगहों पर ताम्रलिप्त का उल्लेख हुआ है।

"In case of Tarmralipta it is to be noted that at the famous part of Tamralipta live the merchant Tamali Mangoputta Who became a Jaina recluse apparently in Mahavira's life time. From the account of Bhagavati Sutra it is known that it was a famous centre of Jainism, and the devotees of Jainism profusely inhabited in this place."

ताम्रलिप्ति का नाम सुविख्यात था। महाभारत में भीम की दिग्विजय वर्णन में ताम्रलिप्ति के साथ कर्वट देश का नाम है।

ताम्रलिपिं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा।

सभापर्व, ३० अध्याय, २२४

वराह मिहिर की वृहत् संहिता में लिखा हैं—

व्याघ्रमुख सूमह कर्वट चान्द्रष्टपुराः। (१४५)

मार्कण्डेय पुराण में भी कर्वट शासन नाम से मानवाचल के

पश्चात् ही चन्द्रशेखर का नाम है। (५८, ११) इससे लगता है कर्वट समूह ताम्र लिप्त के आस पास है। मेदिनीपुर के निकट ही कर्वट देश था।

"But some Jaina texts represent the allied peoples of Anga and Vanga in a good light. Sylvain Levi observes, 'For the Jainas, Anga is almost a holy land. The *Bhogavati* places Anga and Vanga at the head of a list of sixteen Janapadas, before the Magadha. One of the *Upangas*, the *Prajnapana*, classes Anga and Vanga in the first group of Arya peoples whom it calls the Ksatriya.' The list also includes Tamalitti, i.e. the people of Tamralipta in West Bengal (Radha). (P.C. Bagchi, *Pre-Aryan* and *Pre Dravidian in India* (Calcutta, 1929), p. 73.) - pg. 125

ऐतिहासिक स्त्रोतों से यह पता चलता है कि भगवान महावीर ने अपने साधनाकाल का बहुत सा समय राढ़ देश की वज्रभूमि और पण्यभूमि में व्यतीत किया था। अतः जो स्थान उनके पावन चरण स्पर्श से धन्य हुए उनका इसी अंचल में होना स्वाभाविक है। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने बौद्ध सूत्रों से भी कुछ दृष्टांत दिये है जो इस क्षेत्र में निर्ग्रन्थ प्रभाव की पुष्टि करते हैं। भगवान महावीर के विचरण क्षेत्रों में से कुछ प्रमुख स्थानों का परिचय यहाँ दे रहे हैं।

अस्थिकाग्राम : भगवान महावीर गृह त्याग करने के पश्चात् सर्वप्रथम अस्थिकग्राम या अट्ठीयग्राम में आये थे जहाँ शूलपाणि यक्ष का मन्दिर था। वैद्यनाथ धाम अथवा देवघर राढ़ देश का एकमात्र प्राचीन तीर्थ है जिसके साथ केवल नाम को छोड़कर अस्थिकग्राम के शूलपाणि मन्दिर का पूरा सादृश्य है। अस्थिक ग्राम अर्द्ध मागधी में अट्ठि ग्राम होता है। जैन शास्त्रों ने भी अस्थिक ग्राम को अट्ठीय ग्राम कहा है। आश्चर्य का विषय है देवधर और देवघर सन्निहित संथाल परगना जिले का एक वृहद् अंश

आज भी आठ गाँव परगना के अन्तर्गत है। आठ गाँव अट्ठिय ग्राम से बना है। कालक्रम से शिव के नामानुसार एवं एक देव स्थान के रूप में नाम परिवर्तित होकर वैद्यनाथ धाम व देवघर हो गया। स्थानीय लोगों से इसकी सत्यता प्रमाणित होती है। इसके अतिरिक्त रेवेन्यु सेटलमेन्ट में देवघर आठगाँव परगना के अन्तर्गत है। जंभीय ग्राम से देवधर की दूरी ४०-४२ मील है एवं अजय नदी देवघर से ४-५ मील दूर अवस्थित है।

ब्राह्मण गाँव : जैन शास्त्रों में ब्राह्मण ग्राम का उल्लेख है। यहाँ पाठक नन्द उपानन्द रहते थे। ब्राह्मण गाँव वर्त्तमान में ब्राह्मण गाँवा नाम से अजय तट पर मधुपुर से १०-१२ मील पूर्व में संथाल परगना में अवस्थित है। यह एक बर्द्धिष्णु ग्राम है।

चम्पा : जामताड़ा के तीन मील पूर्व में संथाल परगना में अजय नदी के तट पर अवस्थित है। वर्त्तमान नाम है चम्पापुर। जंभीय ग्राम के पश्चिम में २५-२६ मील की दूरी पर अवस्थित है।

पत्रकालय (पत्तकालय) : मधुपुर से सात मील पूर्व में संथाल परगना में अजय नदी के तीर पर अवस्थित है। वर्त्तमान नाम है पातरोल।

नांगला : अजय नदी से ७ मील और जंभीय ग्राम के पश्चिम में १५-१६ मील दूर अवस्थित है। वर्त्तमान नाम है नला। नंगला - नंला - नला।

पूर्ण कलश : जामताड़ा से ३-४ मील उत्तर-पूर्व में संथाल परगना में अजयतट पर अवस्थित है। जंभीय ग्राम से २५-२६ मील उत्तर-पूर्व में है। वर्त्तमान नाम है पूर्णघटि।

कलंबुका : लादा ग्राम के विपरीत अजय नदी के उत्तर तट पर संथाल परगना में अवस्थित है। बीच-बीच में यहाँ मेला लगता है और

पशुबलि होती है। कोई देव-देवी यहाँ नहीं है। यह जंभीय ग्राम से ३ मील उत्तर में अवस्थित है।

भद्दिया अथवा भद्दिला : वर्त्तमान नाम है भादुलिया (वीरभूम)। जंभीय ग्राम से १२ मील उत्तर-पूर्व में और अजय नदी से ४-५ मील उत्तर में अवस्थित है।

कदली समागम : केंदली या केंदुली जो कदली समागाम था वह इसके मेले में केले की आमदनी को देखकर ही समझा जा सकता है। इस अंचल के अन्य किसी भी मेले में केले की इतनी बिक्री नहीं होती। वर्त्तमान में केंदुली जयदेव की केंदुली रूप में प्रसिद्ध है। वीरभूम जिले के अजय तट पर यह अवस्थित है। यह जंभीय ग्राम से ३२ मील पूर्व में है।

मरदाना : वर्त्तमान में मदनपुरा । जंभीय ग्राम से ३ मील पूर्व में है। यहाँ प्राचीन ध्वंसावशेष वर्त्तमान है। अजय नदी से २ मील दक्षिण में और जंभीय गाँव से २ मील पूर्व वर्द्धमान जिले में अवस्थित है।

गौभूमि : वर्त्तमान ग्वालडांगा। संथाल परगना में है। जंभीय ग्राम से १२-१३ मील उत्तर-पूर्व में अवस्थित है।

सिद्धार्थपुर : वर्त्तमान नाम है सिद्धपुर, जिला वर्द्धमान। जंभीय ग्राम से आठ मील पूर्व में अजय नदी के तीर पर अवस्थित है। एक प्राचीन भग्न मन्दिर भी वर्त्तमान है।

व्रज ग्राम : वर्त्तमान नाम है वजडिहि। अजय के उत्तर तट पर सिद्धपुर के विपरीत वीरभूम जिले में अवस्थित है।

कुमारपुर : कुमारडि । सिद्धपुर से ३ मील दक्षिण-पश्चिम में वर्द्धमान जिले में अवस्थित है।

मेंढियग्राम : वर्त्तमान मालडिहा अथवा मानडिया। संथाल परगना के अजय नदी के तट पर जंभीय ग्राम से ६-७ मील उत्तर में अवस्थित है।

श्वेताम्बिका : श्वेतकि अम्बिका। वर्त्तमान में शतकि और अम्बा नामक दो गाँव पास-पास संथाल परगना में हैं। जंभीय ग्राम से ८ मील उत्तर-पूर्व में अवस्थित है।

सुवर्ण बालुका नदी : श्वेताम्बिका के पार्श्व में प्रवाहित है। वर्त्तमान नाम है हिंगुला या हिंला। हिंगुला का अर्थ ही है सुवर्ण। अजय और जंभीय गाँव के ६ मील उत्तर में प्रवाहित है।

मोराक सन्निवेश : मोराक - मोर - आँक या मौर - आँख अर्थात् मयूराक्षी। मयूराक्षी का उत्स स्थान संथाल परगना के हंस डिहा के निकट है।

अनार्यदेश— भगवान महावीर के अनार्य देश में विहार करने और छः बार वर्षा-चातुर्मास्य अनार्यभूमि में अनियतरूप से व्यतीत करने का वर्णन आता है। वह अनार्यभूमि पश्चिम-बंगाल की राढ़भूमि और वीरभूमि आदि होनी चाहिए।

आलभिका (आलभिया)— इन नगरी के बाहर शंखवन उद्यान था। आलभिया के तत्कालीन राजा का नाम जितशत्रु था। महावीर के प्रसिद्ध दस श्रमणोपासकों में से पाँचवाँ उपासक गाथापति चुल्लशतक इसी नगरी का रहने वाला था। भगवान के ऋषिभद्र प्रमुख दूसरे भी अनेक प्रसिद्ध उपासक यहाँ रहते थे, जिनकी भगवान महावीर ने प्रशंसा की थी। यहां पर भगवान महावीर ने पोग्गल परिव्राजक को निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश देकर अपना श्रमणशिष्य बनाया था।

कलंबुका (कलंबुआ)— यहाँ पर महावीर और गोशालक कालहस्ती के हाथ से पकड़े गये और उसके भाई मेघ के पास ले जाने बाद छोड़ दिये गये थे। कलंबुका अंगदेश के पूर्व प्रदेश में कहीं रहा होगा, क्योंकि यहां से भगवान् सीधे राढदेश में गये थे।

कोटिवर्ष (कोडिवरिस)– यह नगर राढ़देश की राजधानी थी। यहां के राजा किरातराज ने साकेत नगर में भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी।

महावीर के समय में कोटिवर्ष में किरात जाति का राज्य था और जब महावीर इधर विचरे थे तब यह प्रदेश अनार्य कहलाता था, परन्तु जैन सूत्रों में राढ़देश की गणना आर्य देशों में की है इससे ज्ञात होता है कि यहां के राजा के महावीर का शिष्य होने का बाद जैन उपदेशकों के विहार से धर्म का प्रचार हो जाने से इसको आर्य देश मान लिया होगा। अथवा आर्य होने पर भी अनार्य लोगों की आबादी अधिक होने से महावीर के छद्मस्थ बिहार के समय यह अनार्य क्षेत्र कहलाता होगा। परन्तु उनके उपदेशों के प्रभाव से यह जैन धर्म का गढ़ बन गया था।

पौराणिक ग्रन्थों में कोटिवर्ष का नाम कर्णसुवर्ण लिखा है। यह देश आजकल के पश्चिम बंगाल में मुर्शिदाबाद के आसपास था, ऐसा पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत है।

कोमिला– बंगाल प्रान्त के चटगाँव विभाग में गोमती नदी के किनारे टिपरा जिला का सदर स्थान कोमिला एक प्राचीन नगर है। पौराणिक काल के लेखों में इसका नाम कोमला मिलता है।

महावीर के निर्वाण के बाद बहुत समय तक कोमिला की जैनधर्म के केन्द्रों में गणना रही है। कल्पसूत्र की थेरावली में जैनश्रमणों की प्राचीन शाखाओं के जो नाम निर्देश किये हैं, उनमें एक शाखा का नाम खेमिलिज्जिया भी है। यह नाम वास्तव में खोमलिज्जिया है जो कोमलीया का प्राकृत रूप है और इसकी उत्पत्ति कोमिला से है। कोमिल्ला के मैनामती स्थान में खुदाई में जैन अवशेष प्राप्त हुए है।

चोराक संनिवेश (चोराय संनिवेस)– जिला वर्द्धमान के इस संनिवेश के समीप जासूस समझकर महावीर नगररक्षकों द्वारा पकड़े गये थे और बाद में सोमा और जयन्ती परिव्राजिकाओं के परिचय देने पर छोड़े गये थे। एक बार इसी चोराक में गोष्ठिक-मण्डली द्वारा गोशालक पीटा गया था।

जंभियगाम (जंभकग्राम)– यह वही जंभियगाम है जहाँ पर इन्द्र ने महावीर का गुणगान किया था और केवलज्ञान का समय बताया था। इसी जंभियगाम के बाहर चैत्य के निकट ऋजुवालिया नदी के उत्तर तट पर श्यामाक गृहस्थ के खेत में सालवृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।

ताम्रलिप्ति (तामलित्ति)– ताम्रलिप्ति के बंगदेश की राजधानी होने का जैन सूत्रों में उल्लेख है। ताम्रलिप्ति के समीपवर्ती प्रदेश को कहीं कहीं समतट भी कहा है। क्योंकि यह प्रदेश समुद्रतट के निकट था और बंगदेश का प्रसिद्ध बंदरगाह था। आजकल मिदनापुर जिला में जहाँ तामलुक नगर है यहीं पहले ताम्रलिप्ति नगरी थी। चीन के प्रसिद्ध यात्री हुएनत्संग की भारत-यात्रा के समय (इसवी सन् ६३० के बाद) ताम्रलिप्ति सामुद्रिक बंदर पर अवस्थित थी पर अब तामलुक से लगभग साठ मील दूर तक समुद्र हट गया है। महावीर के ताम्रलिप्ति में विहार करने का साहित्य में उल्लेख मिलता है।

मोसलि– यह गाँव भी महावीर के उपसर्गक्षेत्रों में से एक था। यहाँ पर आपको चोर की भ्रान्ति से सात बार फाँसी दी गई थी पर प्रत्येक बार फाँसी के टूट जाने से आप को निर्दोष समझकर छोड़ दिया था।

राढ (लाढा)– मुर्शिदाबाद तथा उसके आसपास का पश्चिमी बंगाल पहले राढ कहलाता था। जिसकी राजधानी कोटिवर्ष नगर था। जैनसूत्रों में राढ की गणना साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की है।

रूप्यबालुका– दक्षिणवाचाला और उत्तरवाचाला नामक दो संनिवेशों के बीच में बहनेवाली एक नदी का नाम।

लोहार्गला– यह वर्त्तमान लोहागारा। अजय नदी के ५ मील उत्तर में संथाल परगना में अवस्थित है। यहाँ पर महावीर गुप्तचर होने के शक से पकड़े गये थे, पर बाद में छोड़ दिये गये। लोहार्गला के तत्कालीन राजा का नाम जितशत्रु लिखा है,

बंग– पूर्व समय में बंग शब्द से दक्षिण बंगाल का ही बोध होता था, जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी, जो आज कल तामलुक नाम से प्रसिद्ध है। बाद में धीरे धीरे बंगाल की सीमा बढ़ी और वह पाँच भागों में भिन्न भिन्न नामों से पहिचाना जाने लगा। बंग (पूर्व बंगाल), समतट (दक्षिण बंगाल), राढ़ अथवा कर्ण सुवर्ण (पश्चिमी बंगाल), पुण्ड्र (उत्तरी बंगाल), कामरूप (आसाम)।

वज्रभूमि– बंगाल का वीरभूम प्रदेश जो महावीर के समय में अनार्य कहलाता था। आज भी वहाँ संथाल आदि जातियों का ही आधिक्य है।

वर्धमानपुर– इसके बाहर विजयवर्धन उद्यान था जहां मणिभद्र यक्ष का मंदिर था। तत्कालीन राजा विजयमित्र था।

सूबे बंगाल का आधुनिक वर्दवान नगर, जो कलकत्ते से सड़सठ मील पश्चिम-दक्षिण में अवस्थित है, वर्द्धमानपुर हो तो आश्चर्य नहीं।

बालुकाग्राम– यहाँ पर संगम देव ने भगवान महावीर के ऊपर अनेक प्रकार के उपद्रव किये थे।

विजयवर्धमान– यह उद्यान वर्धमानपुर के समीप था।

विजयपुर– उत्तर बंगाल में गंगा के किनारे पर अवस्थित आज

कल का विजयनगर, ही होना चाहिये जो एक बहुत प्राचीन नगर है। इसके आसपास का प्रदेश पहले पुण्ड्र देश के नाम से प्रसिद्ध था।

वीरभूमि– प्राचीन राढ देश का एक भाग वीरभूमि कहलता है जिसका जैनसूत्रों में वज्जभूमि अथवा वज्रभूमि के नाम से उल्लेख हुआ है। छद्मस्थावस्था में और बाद में भी भगवान महावीर यहाँ विचरे थे।

वीरभूमि के उत्तर-पश्चिम में संथाल परगना, पूर्व में मुर्शिदाबाद दक्षिण में बर्द्धमान हैं।

वेगवती– यह नदी अस्थिकग्राम के समीप बहती थी।

शुद्धभूमि– प्राचीन राढ देश की वह भूमि जहाँ आर्य लोगों की आबादी अधिक प्रमाण में थी। संभवतः यह मुर्शिदाबाद का भूमिभाग होगा।

शूलपाणि चैत्य– अस्थिकग्राम के पासवाला एक यक्ष का मंदिर यहाँ महावीर ने प्रथम वर्षा-चातुर्मास्य व्यतीत किया था और पहली ही रात को यक्ष ने उनको अनेक प्रकार से सताया था।

समतट– बंगाल का एक भाग पहले समतट कहलाता था। जबकि कतिपय विद्वान पूर्व बंगाल को समतट कहते हैं तब कोई कोई दक्षिण बंगाल को प्राचीन समतट बताते हैं।

सानुलट्ठिय गाम– इस गाँव के बाहर भगवान महावीर ने भद्र, महाभद्र और सर्वतोभद्र का प्रतिभापूर्वक ध्यान किया था जिसकी इंद्र तक ने प्रशंसा की थी।

सुवर्णवालुका– यह नदी दोनों वाचाला नगरियों के बीच में पड़ती थी। इसी नदी के पुलिन में भगवान महावीर का अर्धवस्त्र गिर कर रह गया था।

सुह्य– कई विद्वान हुगली और मिदनापुर के बीच के प्रदेश को सुह्य समझते हैं, जो उड़ीसा की सीमा पर फैला हुआ दक्षिण बंग का प्रदेश है। उनके मत से दक्षिण बंग ही, जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी, सुह्य देश था। इसका तात्पर्य हमको यही मिलता है कि हजारीबाग से पूर्व में जहाँ पहले भंगी देश था उसका पूर्व प्रदेश, राढ का दक्षिण पश्चिमी कुछ भाग और दक्षिणी वंग का थोड़ा पश्चिमी भाग पहले सुह्य के नाम से प्रसिद्ध था।

पुण्ड्रवर्धन– मालदह जिले में मालदह से छः मील उत्तर की ओर उत्तर बंगाल की राजधानी पुण्ड्रवर्धन नगर था। आजकल का पाण्डुआ अथवा पडुआ पुण्ड्र का ही अपभ्रंश है। पुण्ड्रदेश में, जिसकी राजधानी पुण्ड्रवर्धन थी, राजशाही, दीनाजपुर, रंगपुर, नदिया, वीरभूम, जंगल महल, पचेत और चुनार जिले शामिल थे।

जैन श्रमणों की प्राचीन शाखाओं में एक का नाम पौण्ड्रवर्धनिका था, वह इसी पुण्ड्रवर्धन से निकली थी। पुण्ड्रवर्धन जैन धर्म के मुख्य केन्द्रों में से एक था।

जम्बूस्वामी— बंगाल में महावीर स्वामी ने जो ज्ञान की गंगा प्रवाहित की उसकी धारा उनके शिष्यों और प्रशिष्यों द्वारा सदियों तक बहती रही। भगवान महावीर के गणधर सुधर्मा स्वामी के शिष्य जम्बूस्वामी थे जो अन्तिम केवली हुए। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने इन महान सन्त के विषय में विस्तृत वर्णन परिशिष्ट पर्व में किया है। जिनसे पता चलता है कि उनका निर्वाण भगवान महावीर के निर्वाण के चौसठ वर्षों बाद हुआ था। उनके भ्रमण प्रचार एवं निर्वाण कहां हुए इस विषय में आगम साहित्य मौन है। दिव्यदान व अशोकावदान के आख्यान से पता चलता है कि उत्तर बंगाल का पुण्ड्र वर्द्धन, मध्य बंगाल का कोटिवर्ष और दक्षिण बंगाल का ताम्रलिप्त प्राचीनकाल से निर्ग्रन्थों के

गढ़ थे। कुछ पारंपरिक आख्यानों से और लोक कथाओं से यह पता चलता है कि जम्बू स्वामी का निर्वाण कोटपुर में हुआ और वहां पर उनकी यादगार में समाधिस्थल है। कोटपुर को आज देवीकोट कहा जाता है। जो पश्चिम बंगाल के दक्षिण दिनाजपुर का गंगारामपुर क्षेत्र माना गया है।

Legends embedded in Divyavadana and Asokavadana reveal that from the days of Gautama Buddha to the days of king Asoka, Pundravardhana was mostly dominated by the Jainas. On the other hand, another old tradition reveals that there were two very ancient Jaina holy places at Pundravardhana -- one at Pundraparvata and other at Kottapura later know as Devakotta. Kotta pura / koti Tirtha was considerated to be the most holy place because here mahamuni Jambusvami attained nirvana and cast his mortal body. All classed of Jainas whether monks or lay-devotees used to come to kottapura / kotitirtha to worship the monument or the mausoleum of the great saint from far and near.

(Chitta Ranjan Pal)

कुछ विद्वानों का मानना है कि जम्बूस्वामी का निर्वाण मथुरा के चौरसिया में हुआ था। प्राचीन जैनाचार्य मथुरा में जम्बूस्वामी के निर्वाण के विषय से अज्ञान थे। बप्पभट्ट सूरि ने नौवीं शताब्दी में मथुरा के जैन मन्दिरों का पुनरुद्धार किया था लेकिन चौरसिया के क्षेत्र के विषय में अपरिचित थे। १४वीं शताब्दी में जिनप्रभ सूरि जी ने मथुरा की यात्रा की लेकिन चौरसिया के विषय में उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया। बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्राचार्य ने भी मथुरा के चौरसिया का कोई वर्णन नहीं

किया है। सोलहवीं शताब्दी में अकबर के शासन के समय वहां पर निर्वाण क्षेत्र स्थापित हुआ। हीर सौभाग्य काव्य में, साहु टोडरमल द्वारा १५७४ ई. में, राजमल द्वारा तथा १५८४ में एवं जिनदास द्वारा लिखित वर्णन में चौरसिया का उल्लेख मिलता है।

९३१ ई. में हरिसेन सूरि द्वारा रचित वृहत्कथा कोश में उल्लेख है कि भगवान महावीर के चौथे पटधर गोवर्द्धनाचार्य कोटपुर तीर्थ का दर्शन कर जब वापिस लौट रहे थे तब शहर के बाहरी क्षेत्र में भद्रबाहु को खेलते हुए देखा।

On the basis of discussions made above, it is to be concluded that the tradition of Jambusvami's association with Chaurasia is a mid-sixteenth century invention. On the contrary, Jambusvami's association with Kottapur seems to be of older origin. In the Brhatkatha Kosa (931 A.D.) Harisena Suri had made a hint to that direction. Regarding Bhadrabahu's first acquaintance with Govardhanacarya, Harisena stated that on his return from pilgrimage to Kottapura, Govardhanacarya, the fourth Srutakevalin, found Bhadrabahu at play with other playmates and took him to his disciplehood.

Mahamuni Jambu Swami and Bengal

आचार्य क्षिति मोहनसेन ने लिखा है कि देवचन्द्र आचार्य ने अपनी कन्नड़ किताब में जिसका नाम राजवली कथा है लिखा है कि गोवर्धनाचार्य (चौथे श्रुत केवली) ने ५०० साधुओं के साथ जम्बूस्वामी की समाधि का दर्शन करके लौटते समय भद्रबाहु को कोटपुर के बाहर खेलते हुए देखा। प्रसिद्ध कन्नड़ विद्वान डॉ. हम्पानागारजइया ने इस विषय में बताया कि देवचन्द्र आचार्य नहीं बल्कि गृहस्थ थे और उनकी

किताब का नाम राजवली कथासार है। जिसमें उन्होंने बताया कि भद्रबाहु का जन्म कोटपुर में हुआ। एक बार जम्बूस्वामी को निर्वाण वंदन कर गोविन्दाचार्य ने कोटपुर के बाहर भद्रबाहु को खेलते हुए देखा। इस कथा से यह निश्चित है कि कोटपुर एक पुराना तीर्थस्थान था जबकि मथुरा का चौरसिया १६वीं शताब्दी के मध्य में स्थापित तीर्थ है। यह विवरण इस बात की भी पुष्टि करता है कि बंगाल में महावीर स्वामी और उनके अनुयायियों ने श्रमण संस्कृति का प्रचार किया और भगवान महावीर के चौसठ साल बाद जम्बूस्वामी का निर्वाण भी इसी बंगाल के कोटपुर क्षेत्र में हुआ। जहां उनकी स्मृति में तीर्थ बनाया गया था।

The discussions made above lend us to believe that Kotitirtha Kottapur is an older pilgrimage centre, probably had its origin in the pre-Christian centuries while Chaurasia as a pilgrimage centre for the Jainas came into existence during the mid-sixteenth century. And as such there is no difficulty in assuming that Jambusvami's association with Kottapur or Kotitirtha made it a holy pilgrimage centre for the Jainas since the time of the fourth *Srutakevalin* or even earlier.

Chitta Ranjan Pal

बंगाल के राजशाही जिले में बदलगाछी थाने के अन्तर्गत और कलकत्ता से १८९ मील उत्तर की ओर जमालगंज स्टेशन से ५ मील पश्चिम की ओर पहाड़पुर है। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर के ध्वंसावशेष ८१ बीघों में हैं जिनके चारों ओर इष्टक निर्मित प्राचीर है। इनके मध्य का टीला बहुत बड़ा होने से गाँव वाले इसे 'पहाड़' के नाम से पुकारने लगे और इसी से यह स्थान पहाड़पुर कहा जाने लगा। यहाँ से गुप्तकाल १५९

(सन् ४७८) का ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। पुरातत्ववेत्ता के. एन. दीक्षित के अनुसार पहाड़पुर में पहले जैन बिहार था जो बाद में बौद्ध बिहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ मिले ताम्रपत्र में वटगोहाली ग्रामस्थ श्री गुहनन्दी के एक जैन विहार का उल्लेख है। इसमें पुण्ड्रवर्द्धन के विभिन्न ग्रामों में भूमि क्रय कर एक ब्राह्मण दम्पति द्वारा वटगोहाली के जैन विहार के लिए दान किया जाना लिपिवद्ध किया गया है। पहाड़पुर से संलग्न पश्चिम की ओर अवस्थित यह वटगोहाली वर्त्तमान का गोआलभीटा ग्राम है और इस ग्राम में मन्दिर की सीमा का कुछ अंश अवस्थित है।

सन् १८०७ में डाक्टर बुकानन हैमिल्टन ने इस टीला (जिसके अन्दर से यह मन्दिर निकला है) को 'गोआलभीटा का पहाड़' के नाम से उल्लिखित किया है। इस लेख में उल्लिखित वटगोहाली का जैन विहार निश्चय से पहाड़पुर के इस मन्दिर के मूल स्थान पर अवस्थित था और वटगोहाली से ही गोआलभीटा हो गया मालूम होता है।

ईस्वी पूर्व तृतीय शताब्दी में उत्तर बंग मौर्यों के शासनाधिकार में था और पुण्ड्रवर्द्धन नगर में उनका प्रान्तीय शासक रहता था। गुप्तकाल में भी बंगाल के इस प्रान्त की राजधानी पुण्ड्रवर्द्धन थी। आजकल जो स्थान महास्थान के नाम से प्रसिद्ध है, उसे ही प्राचीनकाल में पुण्ड्रवर्द्धन कहते थे। पहाड़पुर, महास्थान से उत्तर-पश्चिम की ओर २९ मील पर और बानगढ़ से दक्षिण-पूर्व की ओर ३० मील पर अवस्थित है। इन दोनों प्रधान नगरों के निकट इस मन्दिर को स्थापित करने का आशय यह था कि मुनि जन नगरों से बाहर एकान्त में रहकर शान्ति से आराधना के साथ-साथ विद्याध्ययन करें ताकि नगर निवासियों को भी धर्मोपदेश का लाभ मिलता रहे। दूसरे, उस समय पुण्ड्रवर्द्धन और कोटिवर्ष जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल होने के कारण ये जैनाचार्यों के प्रधान पट्टस्थान भी थे। उस समय वहाँ जैनों का ही पूर्ण प्राधान्य था।

गुप्त साम्राज्य के प्रभुत्वकाल में भी यद्यपि यहाँ जैनों की ही प्रधानता रही, पर साथ-साथ ब्राह्मण-प्रभाव भी धीरे-धीरे बढ़ता रहा; किन्तु बौद्धों का प्रभाव यहाँ बहुत ही कम था। इसका अनुमान चीनी यात्री ह्वेसांग के वर्णन से भली-भाँति हो जाता है।

छट्ठी शती से गुप्तों का प्रभाव क्षीण होता गया और सप्तम शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में महाराजा शशांक का आधिपत्य हो गया। शशांक शैव धर्मावलम्बी था। उसने जैन और बोद्धों को बहुत ही सताया था। तो भी जैनों के पाँव पूर्ण रूप से यहाँ से नहीं उखड़े। तत्पश्चात् सप्तम शताब्दी में ही जब बंगाल में अराजकता का बोलबाला हुआ, तब धीरे-धीरे यहाँ से जैन धर्म विलीन होता गया। वटगोहाली का यह श्री गुहनन्दी जैन विहार भी पुण्ड्रवर्द्धन और कोटिवर्ष की जैन संस्थाओं की भाँति क्षतिग्रस्त हुआ था। अष्टम शताब्दी में पुनः यहाँ जब शान्ति हुई और पाल राज्य सुदृढ़ता से सुस्थापित हुआ उस समय यह स्थान सोमपुर के नाम से प्रख्यात हो चुका था।

पाल नृपतियों का अधिकार ३५० वर्ष तक रहा। कुछ पाल राजा बौद्ध धर्मावलम्बी थे। इनके समय में यहाँ जैनों की प्रधानता नष्ट हो गई और बौद्धों के प्रभाव ने जोर पकड़ा और इस जैन विहार पर उनका पूर्ण अधिकार हो गया।

ईसा की अष्टम शताब्दी के शेष भाग में अथवा नवम शताब्दी के प्रारम्भ में पाल वंश के द्वितीय सम्राट महाराज धर्मपाल ने इस निग्रन्थ विहार के ऊपर महाविहार निर्माण किया था, तब से यह स्थल धर्मपाल देव का 'सोमपुर का महाबौद्ध विहार' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

चीनी परिव्राजक ह्वेसांग के आगमन से १५० वर्ष पूर्व का यह ताम्र लेख जैनों के प्रभाव का केवल समर्थन ही नहीं करता है किन्तु यह भी प्रमाणित करता है कि यह विहार अति प्राचीन है।

पहाड़पुर से प्राप्त ताम्रपत्र की पक्तियाँ के अक्षर घिस गये हैं तथा मजदूरों की असावधानी से भी ऊपर के दक्षिण कोने में एक छिद्र हो गया है। फिर भी इस ताम्रपत्र की अवस्था अच्छी है। यह ताम्रपत्र ७$^{१}/_{४}$ x ४$^{१}/_{२}$ इंच का है और इसका वजन २९ तोला है।

इसकी लिपि पंचम शताब्दी की है। भाषा संस्कृत है। अंतिम पाँच अमंगल प्रार्थी पद्य (जो यहाँ पर नहीं दिये जा रहे हैं।) के अतिरिक्त सारा लेख गद्य में है।

पहाड़पुर का ताम्रशासन, गुप्ताब्द १५९ (सन् ४७९) के द्वितीय, अष्टम और चौदहवें श्लोक में जम्बू देव का वर्णन आया है।

अग्रभाग

१. स्वस्ति (।।) पुण्ड्र [वर्द्ध] नाद = आयुक्तकः आर्य्य-नगरश्रेष्टि-पुरोगंच = आधिष्ठान्—आधिकरणम् दक्षिणांशक-वीथेय-नागिरट्ट-

२. माण्डलिक-पलाशाट्ट-पार्श्विक-वट-गोहाली-जम्बुदेव-प्रावेश्य-पृष्ठिम-पोत्तक-गोषा-टयुंजक-मूल नागिरट्ट-प्रावेश्य—

३. नित्व-गोहालीषु बाह्मण्-ओत्तरान् = महत्तर-आदि-कुडम्बिनः कुशलम्-अनुवराण्र्य = आनुबोधयन्ति (I) विज्ञापयत्य = अस्मान् = ब्राह्मण-नाथ—

४. शर्म्मा एतद्-भार्य्या रामी च (I) युष्माकम् इह् = आधिष्ठान्-आधिकरणे द्वि-दीनारिक्कय-कुल्यवापेन शश्वत्-काल्-ओपभोग्य--आक्षय-नीवी-समुदय-बाह्य-आ

५. प्रतिकर-खिल-क्षेत्र-वास्तु-विक्क्रयो = नुवृत्तस् = तद् = अर्हथ् = आनेन् = ऐव = वक्रमेण् = आवयोस् = सकाशाद् = दीनार = त्रयम् = उपसंगृह्य् = आवयो (स) = स्व-पुण्य्-आप्या-

६. थनाय वट-गोहाल्याम् = अब = आस्यां = काशिक-पंचस्तूप-निकायिक-निग्रन्थ-श्रमण्-आचार्य्य-गुहनन्दि-शिष्य-प्रशिष्य्-आधिष्ठित-विहारे।

७. भगवताम्-अर्हताम-गन्ध-धूप-सुमनो-दीप्-आद्य्-अर्थन् = तल--वाटक-निमित्तञ्-च अ (त) एव वट-गोहालीतो वास्तु-द्रोणवापम्--अध्यर्द्धान् = ज—

८. म्बुदेव-प्रावेश्य-पृष्ठिम = पोत्तकेत् क्षेत्र द्रोण-वाप-चतुष्टयम गोषा--टपृंजाद् = द्रोणवाप-चतुष्टयम् मूल नागिरट्ट—

९. प्रावेश्या-नित्व-गोहालीतः अर्द्ध-त्रिक-द्रोणवापान् = इत्य् = एवम् = अध्यर्द्धम क्षेत्र-कुल्यवापम् = अक्षय-नीव्या दातुम् = ह (त्य् = अत्र) यतः प्रथम—

१०. पुस्तपाल-दिवाकरनन्दि-पुस्तपाल-धृतिविष्णु-विरोचन-रामदास--हरिदास-शशिनन्दि-षु प्रथमनु ..... (ना) म् अवधारण—

११. य = आवधृतम् अस्त्य् = अस्मद् अधिष्ठान-आधिकरणे द्वि-दीनारिक्का-कुल्यवापेन शश्वत् काल्-ओपभोग्य्-आक्षय-नीवी-समु (दय-वा) ह्य आप्रतिकर—

१२. (खिल)-क्षेत्र-वास्तु-विक्क्रयो = नुवृत्तस् = तद = युष्माम् = ब्राह्मण-नाथ-शर्म्मा एतद् भार्त्या रामी च पलाशाट्ट-पार्श्विक-वट-गोहालीस्थ (?)-य

१३. (काशि)...क-पंच-स्तूप-कुल-निकायिक-आचार्य्य-निग्रन्थ-गुहनन्दि-शिष्य-प्रशिष्य्-आधिष्ठित-सद्-विहारे अरहताम् गन्ध (धूप्)-आद्य्-उपयोगाय

१४. (तल-व्) आटक-निमिताञ् = च तत्र्-ऐव वट-गोहाल्यां वास्तु-

द्रोण-वापम् = अध्य-र्द्ध क्षेत्राञ् = जम्बुदेव–प्रावेश्य = पृष्ठिम–पोत्तके द्रोण-वाप–चतुष्ट्यं

१५. गोषाट पुञ्जाद् = द्रोणवाप–चतुष्टयं मूल–नागिरट्ट–प्रावेश्य–नित्व--गोहालीतो द्रो-णवाय–द्वयम् = आढवा (प-द्व) यू-आधिकम् = इत्य् = एवम् = अ–

१६. ध्यर्द्ध क्षेत्र-कुल्यवापम् प्रार्थदते = ञ न कश्चिद् = विरोधः गुणस् = तु यत् = परम–भट्टारक–पादानाम् = अर्त्थ = ओपचयो धर्म्म-षड़–भाग्–आप्याय–

१७. नञ–च भवति तद्–एवन् = क्रियताम = इत्य = अनेन् = आवधारना + वक्रमेण–आस्माद्–ब्राह्मण–नाथ–शर्म्मत एतद्–भार्य्या–रामि-पाश–च दीनार–त्र

१८. यम् = आर्याकृत्य = ऐताभ्यां विज्ञापितक–क्रम–ओपयोगाय् = ओपरिनिर्द्दिष्ट = ग्राम–गोहालि–केषः तल-वाटव–वास्तुना सहक्षेत्रं

१९. कुल्यवाप अध्यर्द्धो = क्षय–नीवी–धर्मेण दत्तःकु १ द्रो ४ (१) तद् = युष्माभिः स्व-कर्म्मण्–आविरोधिस्थाने षट्क–नडैर् = अप–

२०. विञ्च्छय दातव्यो = क्षय-नीवी–धर्मेण च शश्वद् = आचन्द्र-आर्क्क-तारक–कालम् = अनु-पालयितव्य इति (१) सन् १००-५०४

इस ताम्रलेख के विषय में प्रो. चित्तरंजनपाल का कहना है कि इस लेख में जम्बूदेव का नाम ही उनके इस क्षेत्र में आने एवं उनके निर्वाण के प्रतीक रूप में चैत्य या स्तूप हो सकने की सम्भावना निश्चित करता है। जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। प्रसिद्ध भाषाविद् प्रौ. सत्यरंजन बनर्जी भी यह मानते है कि जम्बूदेव भगवान महावीर के गणधर सुधर्मा स्वामी के प्रमुख शिष्य और अन्तिम केवली जम्बूस्वामी हो सकते हैं क्योंकि श्रमण परम्परा में तीर्थंकरों और आचार्यों के नाम के बाद स्वामी

या देव दोनों ही लिखने का प्रचलन था। ब्राह्मणों और बौद्धों का प्रभाव बंगाल में लगभग चौथी शताब्दी के आस-पास हुआ था। इस ताम्रलेख की प्राप्ति तथा जैन विहार का बौद्ध विहार में परिवर्तन मेरे इस कथन की पुष्टि करता है कि बंगाल में भी अन्य क्षेत्रों की भांति जैन मंदिरों, मूर्तियों और स्तूपों को नष्ट कर दिया गया या परिवर्तित कर उनके वास्तविक स्वरूप को बदलने की कुचेष्टा की गई।

पंद्रहवीं शताब्दी में रत्ननन्दी ने अपने भद्रबाहु चरित्र में इसी प्रकार का वर्णन किया है।

रत्ननंदी के अनुसार–इसी पुण्ड्रवर्द्धन देश में कोट्टपुर नामक एक नगर था। वह नगर एक स्वर्णखण्ड की तरह शोभायमान था। वृहद् उत्तुंग अट्टालिकाएँ, परिखा, प्राकार और गोपुरों के नगरद्वारा और उत्तुंग प्रासाद पंक्तियों से वह स्थान सुशोभित था।

तंत्र कोट्टपुर रम्य दयोतते नाकखण्डवत्।
अगाधीत्तुंग साट्टाले : खालिका-शाल-गोपुरै :।।

तीर्थयात्रा प्रसंग में श्री गोवर्द्धनाचार्य पौण्ड्रवर्द्धन में कोट्टपुर आए।

प्रतिभाशाली भद्रबाहु को देखकर गोवर्द्धनाचार्य इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें अपना शिष्य बनाना चाहा। पिता-माता ने भी आनन्दपूर्वक इसके लिए सम्मति दे दी। गोवर्द्धनाचार्य जैनाचार्य थे। भद्रबाहु ने भी जैन दीक्षा ग्रहण कर ली।

आचार्य हेमचन्द्र के त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित में ६३ महापुरुषों की चरित्र वर्णित है। उसके परिशिष्ट भाग में स्थविरावली चरित्र में भी भद्रबाहु का चरित्र वर्णित है। चतुर्थ परिच्छेद के अन्तिम भाग में उन्होंने भद्रबाहु के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। अमरपुर से भी मनोरम

कोट्टपुर में सोम शर्मा ब्राह्मण के घर सुन्दरी सोमश्री के गर्भ से अनेक गुणों से सम्पन्न पुत्र रूप में जिन्होंने जन्म ग्रहण कर योग्य गुरु का आश्रय लेकर निर्मल ज्ञान दुग्ध-जलधि को उत्तीर्ण किया वे गणनेता भद्र और महागुरु भद्रबाहु मेरे चित्त में दीप्यमान हीं।

यः श्रीकोट्टपुरे जितामरपुरे सोमादिशर्मद्विजा
दासीदेकगुणाकरोत्ङगजवरः सोमश्रियां सुश्रियाम्।
प्रोत्तीर्णोत्मलबोध दुग्ध जलर्धि श्रीत्वा गरीयो गुरू
भद्रोत्सौ सम भद्रबाहुगणषेः प्रद्योततां मानस ।।१७२।।

आर. सी. मजूमदार आदि विद्वानों का मानना है कि भद्रबाहु का निर्वाण स्थल कोटिपुर पुण्ड्रवर्द्धन के पास नहीं होकर राढ़अंचल में था। जबकि कुछ विद्वान पुण्ड्र नगर में देवीकोट को मानते हैं। भगवान महावीर के समय कोटपुर कोटिवर्ष और जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल कोटपुर एक ही थे ऐसा भी कई विद्वानों का मत है।

महावीर के पश्चात् ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी में विख्यात् जैन आचार्य एवं अन्तिम श्रुत-केवली भद्रबाहु का बंगाल में जैनधर्म का प्रचार उल्लेखनीय है। भद्रबाहु का जन्म देवकोट में हुआ था। उस समय देवकोट को कोटिपुर कहा जाता था। कोटिपुर उत्तरी बंगाल के मध्य वर्त्तमान दिनाजपुर जिला का वानगढ़ माना जाता है।

कोटिवर्ष के विषय में हम पुरातन ताम्रपत्रों में कुछ उल्लेख पाते हैं। जिसमें कोटिपुर को ही कोटिवर्ष बताया गया है।

बंगलादेश के अनेकों ताम्रपत्रों में कोटिवर्ष का नाम पाते हैं। १८०६ ईसाइ में दिनाजपुर जिले के अन्तर्गत आमगाछी ग्राम के तृतीय विग्रहपान देव का एक ताम्रपत्र मिलता है। इससे पता चलता है पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति के अन्तर्भुक्त कोटिवर्ष विषय (२४ पंक्ति) था। दिनाजपुर

के अन्तर्गत वाणगढ़ के ध्वंस स्तूपों में प्रथम महिपाल देव का एक ताम्रपत्र मिलता है। उससे पता चलता है परम सौगत राजा महिपाल देव अपने नवम राज्यांक में पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति के अन्तर्गत कोटिवर्ष विषय में (३०-३१वीं पंक्तियों) चूटपल्लिकावर्जित कुरट पल्लिका ग्राम बुद्ध भट्टारक के उद्देश्य से महाविष्णु संक्रान्ति के दिन कृष्णादित्य देवशर्मा को दान किया।

सन् १८७५ में दिनाजपुर जिले के मनहलि ग्राम में पुष्करिणी खोदते समय मदनपाल देव का एक ताम्रपत्र मिला था। जिसमें परम सौगत राजा मदनपाल देव अपने अष्टम राज्यांक में महारानी चित्रमतिका देवी को महाभारत सुनाने की दक्षिणा रूप में चम्पाहट्टि ग्रामवासी बटेश्वर स्वामी शर्मा को पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति में कोटिवर्ष विषय के (३२ पंक्ति) इलावर्त्त मण्डल में कोष्टगिरि ग्राम में भूमिदान किया। इन ताम्रपत्रों में दिये विवरणों से भी यह स्पष्ट होता है कि जम्बूस्वामी का निर्वाण स्थान और आचार्य भद्रबाहु का जन्म स्थान पुण्ड्र वर्द्धन में ही था। भद्रबाहु अपने समय के सबसे अधिक प्रभावशाली धर्म प्रचारक थे। कहा जाता है वे मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के गुरु थे। चन्द्रगुप्त ने उन्हीं की प्रेरणा एवं प्रभाव से जैनधर्म ग्रहण किया था।

कल्पसूत्र में भद्रबाहु के शिष्य गोदास का उल्लेख पाया जाता है। गोदास के शिष्यों की चार शाखाओं को बंगाल से सम्बन्धित बताया गया है। ताम्रलिप्तिया-तमलुक शहर के, कोटिवर्षिया-दिनाजपुर के निकटस्थ वानगढ़ के, पुण्ड्रवर्द्धनिया-वगुड़ा के निकटस्थ महास्थान गढ़ के और दासी खर्वटिया-मेदिनीपुर के समीप खर्वट के कुछ विद्वान इसे कोमिला से युक्त बताते हैं। ये सभी शाखायें बंगाल से संबंधित है।

The Jaina religion was firmly established in Bengal in the Mauryan period more than two thousand years ago. The

Kathakosa preserves a tradition that the Jaina preceptor and saint, Bhadrabahu who was a contemporary of Candragupta Maurya, was born at Devkot, also known as Kotivarsa, in north Bengal. The place is identified with ancient Bangarh in West Dinajpur district. After Bhadrabahu his disciple, Godasa, established an order known as Godasagana. Among the branches of this order split up from the main church, the three named as Tamraliptika, Kotivarsiya and Pundravardhaniya evidently belonged to Bengal. While Tamraliptika refers to the ancient city-port, Tamralipta, which lies buried at modern Tamluk on the Rupnarayan in Midnapur district, the other two obviously belonged to the northern parts of Bengal covering the ancient Kotivarsa and Pundravardhana.

J.J. Vol xvii, No.3, pg.82.

बंगलादेश के मैनामति में उत्खनन से प्राप्त मौर्यकाल से पूर्व के पंचमार्क के सिक्के एवं गुप्तकालीन जैन विहार का पता चला है। One Monastic recluse of the Jainas is said to have been found at mainamati, now in Bangladesh.

Smt. Bandana Saraswati, Jainism in Bengal.

बंगलादेश के नरसिंहडी की खुदाई में ४५० ई. पूर्व की सभ्यता के अवशेष मिले है। जिससे मालूम होता है कि उस समय यहाँ के लोग दक्षिण एशिया और रोम से व्यापार करते थे। यह जगह ढाका से ७५ कि. मी. पर बारी और बटेश्वर गाँव के बीच में नरसिंहडी जिले में है। यह खुदाई में अत्यन्त प्राचीन किले के अवशेष भी मिले है एवं ६०० ई. पू. के पंचमार्क चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए है जिससे पता चलता है कि

यह एक महाजनपद था। तथा इसको हम गंगरादई के अन्तर्गत मान सकते हैं। ग्रीक इतिहासकारों ने इसका वर्णन सोनगढ़ के नाम से किया है। यहाँ प्राप्त अवशेषों से २५०० साल प्राचीन उन्नत हस्तशिल्प कला का भी पता चलता है।

A site dated to 450 BC has been excavated in Narsingdi, Bangladesh. It may lead to the discovery of a part of the Brahmaputra civilization. The archaeologists, however, erroneously are trying to fit it into the Mauryan Empire which came into existence more than a century later. They also assume that the people of the site traded with South Asians and the Romans. This site is older than the Pundrabardhan site which has been dated to 370 BC and some other ancient Bengal sites.

January 8th, 2002 News :

सिन्धु घाटी सभ्यता के बाद जो नगर सभ्यता हमें आकर्षित करती है वह है वर्तमान बंगलादेश का महास्थानगढ़। यहाँ खुदाई से प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि बंगाल की कला और शिल्प में सिंधु संस्कृति की झलक दिखाई पड़ती है। There has been remarkable similarities of arts and crafts of Bengal with the artifacts found in Mohanjodaro and Harappa. Dr. D.C. Sen

१९२८-२९ में विश्व प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता के. एन. दीक्षित तथा बोगरा के प्रभातचन्द्र सेन द्वारा यहाँ खुदाई में अनेक किले मिले। यहाँ से मिले अवशेषों से ऐसा प्रतीत होता है कि पाल राजाओं के काल से पूर्व गुप्तकाल में यहाँ मंदिर और शहर थे। निकटवर्ती क्षेत्रों जिनमें वसुविहार, हलुदविहार, सीताकोट, जगददल आदि में भी अनेक टेराकोटा की मूर्तियाँ एवं सामग्री मिली। जैन साहित्य में पुण्ड्र जनपद का वर्णन

मिलता है जो यहीं पर था प्रतीत होता है। सातवीं शताब्दी में ह्वेगसांग ने भी पुण्ड्र नगर का वर्णन किया था। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पुण्ड्र जनपद में ही राजशाही, बोगरा के अन्तर्गत महास्थानगढ़ तथा पहाड़पुर आदि स्थान थे।

प्रसिद्ध युनानी विद्वान मैगस्थनीज के उल्लेखों से बंगाल के महत्वपूर्ण जगहों का वर्णन मिलता है। उन्होंने जिन अनार्य जातियों का वर्णन किया था। उसमें बंगाल के बंग और पुण्ड्र जाति का उल्लेख है। इन अनार्यों के विषय में मैगस्थनीज ने लिखा है–

1. All the Indians are free and none of them is a slave. They do not even use aliens as slaves and much less a country-man of their own.

2. They live frugally. They observe good order. Theft is a very rare occurrence. Their manners are simple. They have no suits about pledges or deposits. They confide in each other. Their houses and property they generally leave unguarded. They possess good, sober sense.

3. The Indians neither put out money at usury not know how to borrow. They do not do or suffer wrong. They neither make contracts nor suffer securities.

ये वर्णन श्रमण संस्कृति के लोगों की जीवन चर्या को प्रकट करते हैं। अमियकुमार बन्द्योपाध्याय लिखते हैं– "जैनों का धर्मग्रन्थ 'कल्पसूत्र' और बौद्धों के धर्म ग्रन्थ 'बोधिसत्वावदान कल्पलता' आदि से भी जाना जाता है कि ईसा पूर्व काल से ही पुण्ड्रवर्द्धन प्राच्य देश में जैन धर्म का सर्वप्रधान केन्द्र था।"

मौर्यकाल– मौर्य वंश के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त श्रमण संस्कृति के थे जिसका वर्णन जैन साहित्य में मिलता है तथा श्रवण बेलगोला में चन्द्रगिरि पर्वत के शिलालेखों से भी प्राप्त होता है। चन्द्रगिरि पर्वत पर बिन्दुसार द्वारा निर्मित मंदिर भी इसकी पुष्टि करता है। हम ऊपर लिख चुके है कि चन्द्रगुप्त के गुरु भद्रबाहु स्वामी बंगाल के थे । ताम्रलिप्त पर कलिंग का अधिकार अशोक के कलिंग आक्रमण का प्रमुख कारण था। बौद्धग्रन्थों से भी हमें मौर्य काल में बंगाल में निर्ग्रन्थों के प्रभाव का पता चलता है। उल्लेखनीय है कि "मौर्य राजागण जिस समय पाटलीपुत्र से बंग देश पर शासन करते थे उस समय इस देश में जैन धर्म ने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी कि परवर्ती कई शताब्दियों तक उसका प्रभाव बना रहा।"

बंगाल में जैन युग की स्मति, श्री गोपेन्द्र कृष्ण वसु

चन्द्रकेतुगढ़ की खुदाई में प्राप्त मौर्य कालीन जैन अवशेष भी इसकी पुष्टि करते हैं। लगभग ४९० ई. पू. में श्रेणिक के पुत्र आजात शत्रु ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उसकी सेना में ३००० हाथी थे जबकि यूनानी स्रोतों से यह मालुम पड़ता है कि बंगाल के राजा के पास ४००० युद्ध पारंगत हाथी थे। अतः बंगाल के राजा काफी शक्तिशाली प्रतीत होते हैं। आजात शत्रु ने जब वैशाली भंग किया तो वहां के गणपति चेटक का पुत्र शोभनराय कलिंग भाग गया था वह अपने साथ जिन मूर्ति, जिसकी वे पूजा करता था, ले गया। इसी जिनमूर्ति को नन्द राजा कलिंग पर आक्रमण कर वापिस मगध लाये थे। अन्त में खारवेल ने मगधापति पुष्यमित्र को हराकर इस मूर्ति को पुनः कलिंग में प्रतिष्ठित किया। श्रेणिक, आजातशत्रु और नन्द राजाओं के समय बंगाल बहुत ही शक्तिशाली था। कलिंग सम्राट खारवेल के प्रभाव का विस्तार बंगाल में भी था। कलिंग बंगाल से मिला हुआ था। दक्षिण बंगाल और कलिंग क्षेत्र की संस्कृति प्रायः समान रूप में मिलती

है। हाथीगुम्फा लेख से भी यह विदित होता है कि उड़ीसा के राजा खारवेल के अधीनस्थ बंगाल के क्षेत्र थे। प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचन्द्र मजूमदार लिखते हैं कि—

There is an indirect evidence to show that Jainism had established its influence in Bengal in the 4th century B.C. The Hathigumpha inscription of Kharavela tells us that this king had brought back an image of the Jina of Kalinga which had been taken away by Nanda was evidently a king of the Nanda dynasty who ruled over the Gangaridai or Gandaridai and the Prasioi, mentioned by the Greek writers. Inspite of the loose manner in which these two terms are used by them, it may be reasonably inferred from the statements of the Greek and Latin writers that about the time of Alexander's invasion the Gangaridai were a very powerful nation ruling over the territory about the mouths of the Ganges, and either formed a dual monarchy with the Prasioi or were otherwise closely associated with them on equal terms in a common cause against the foreign invader. The Nanda king who carried the Jaina image from Kalinga may be taken as the ruler of the Gangetic Delta, and the carrying away of the Jaina image to preserve it with care (for it existed unimpaired for 2 or 3 centuries when Kharavela took it back to Kalinga) undoubtedly whows a leaning for Jainism either on the part of the king, or of the people, or, perhaps of both. Kharavela himself was a Jaina, and his own action shows how much the king yearned for the possession of a sacred image of a sect to which he was attached, and it would not be unreasonable to take the same view about the Nanda king. It may, of course, be argued that if the Nanda king in question had a very extensive territory outside Bengal, his own religious feeling might not have reflected that of Bengal. But as the Gangaridai were the people of Bengal, primarily, and Kalinga was adjacent to this region, the view that the carrying away of the Jaina image by the king of Gangaridai indicates the Jaina influence in Bengal has a great degree of probability.

अभी तक यही जाना जाता था कि सिकन्दर मगध की शक्ति से भयभीत हो वापिस लौट गया लेकिन यूनानी इतिहासकारों के अनुसार सिकन्दर सिर्फ मगध नहीं बल्कि मगध और बंगाल की विशाल सेना की शक्ति से भयभीत होकर वापस लौटा था।

The first western reference comes from Alexandre's invasion of India. Alexandre had conquered much of the "known world" and had defeated the western kingdoms of India. They were stopped at the Magadha empire. The Greek historians suggest that Alexandre retreated fearing valiant attacks of the mighty Gangaridai and Prasioi empires which were located in the Bengal region. Alexandre's Historians refer to Gangaridai as a people who lived in the lower Ganges and its tributaries. These empires attest the level of organisation of the peoples of Bangla region.

डायडोरस के लेखों में भी इन नामों का उल्लेख है—These names are again mentioned by Diodorus. He describes

Gangaridai as a nation beyond the Ganges, whose king had 4 thousand trained and equipped elephants. Later Periplus and Ptolemy also indicate that Bengal was organised into a powerful kingdom at the onset of the first millennium AD.

युनानी विद्वान पेरिप्लस ने भी बंगाल का वर्णन किया है– When Greek historian Periplus talks about India in the first century AD, apparently he speaks of Bengla. He says, "There is a river near it called the Ganges (Ganga)" ... "On its bank is a market town which has the same name as the river, Ganges (Ganga). Through this place are brought malabathrum and Gangetic spikenard and pearls and muslins of the finest sorts, which are called Gangetic.

चंद्रगुप्त मौर्य के समय युनानी राजदूत मेगस्थनीज उनके दरबार में आया था जिसने अपनी पुस्तक इण्डिका में तत्कालीन जातियों और स्थानों का उल्लेख किया है। उसने जिन अनार्य जातियों के विषय में लिखा है उनमें बंग और पुण्ड्र का वर्णन है। पुण्ड्र और पौंण्ड्र भिन्न क्षेत्र है। पुण्ड्र है गंगा के उत्तर में और पौण्ड्र देश गंगा के दक्षिण में।

जिस अजय नदी का विवरण हमें भगवान महावीर के विचरण क्षेत्र में, केवलज्ञान प्राप्ति के स्थान के रूप में मिलता है मेगस्थनीज ने उसे एमिस्टिस कहा है। "The city Katadupa, which this river passes, Wilford would identify with Katwa or Cutwa, in Lower Bengal, which is situated on the western branch of the delta of the Ganges at the confluence of the Adji. As the Sanskrit form of the name of Katva should be Katadvipa '(dvipa, an island'), M. de St. - Martin thinks this conjecture has much probability in its favour.

The Amystis may therefore be the Adji, or Ajavati as it is called in Sanskrit. Ancient India p. 189

अजय नदी झारखण्ड और बंगाल की महत्वपूर्ण नदी मानी जाती है। मुंगेर के दक्षिण पश्चिम में ३०० मीटर ऊंची पहाड़ी से निकलती है और सिमजुरी चितरंजन के पास से बंगाल में प्रवेश करती है। झारखण्ड, वर्द्धमान और वीरभूम की सीमा से होती हुई कटवा में भागीरथी में जाकर समाहित हो जाती है। इसकी लम्बाई २८८ किलोमीटर है जिसमें बंगाल का १५२ किलोमीटर का क्षेत्र है। पहाड़ी रास्तों से गुजरकर वर्द्धमान जिले के आसग्राम से यह मैदानी भागों में होते हुए आगे बढ़ती है। इसके दोनों ओर घने जंगल और बड़े बड़े शाल वृक्ष थे जो आज प्रायः नष्ट हो गये हैं।

अभी हॉल ही में अजय नदी के पास पांडूराजाडिभी की खुदायी में एक बहुत ही प्राचीन सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए है जो सिन्धु घाटी सभ्यता के समकक्ष है। यह स्थान कटवा के पास है।

इसी प्रकार ताम्रलिपि के लोगों को मैगस्थनीज ने टेलेक्टो और मालदा के निवासियों को मोलिन्डी के नाम से उल्लिखित किया गया है। गंगरिदी या गंगरीदेश आधुनिक lower Bengal में है जिसकी राजधानी Gange बतायी है। जो कलकत्ते के आस-पास कहीं पर थी। टोलमी ने भी लिखा है कि 'यह नदी गंगराई जाति की पूर्वी सीमा है। इस जाति का हस्तिबल असीम है इसी कारण उनका देश किसी विदेशी राजा से विजित नहीं हुआ क्योंकि अन्य सभी जाति इन विकट आकार जन्तुओं की संख्या और बल से भय खाते थे।'

चन्द्रकेतुगढ़ :

भगवती सूत्र में जिन १६ जनपदों का वर्णन मिलता है उसमें बंग जनपद एक बहुत बड़ा जनपद था जिसकी सीमाएं पूर्व में बंगला देश

के मैनामती से विक्रमपुर, बारीबटेश्वर (ढाका), जैसोर, खुलना, चन्द्रकेतुगढ़, चौबीस परगना होते हुए पश्चिम में ताम्रलिप्त तथा मेदनीपुर जिले तक था। इस जनपद का आस्तित्व भगवान पार्श्वनाथ के समय में भी था। भगवान पार्श्वनाथ का यहाँ पर विचरण हुआ था। प्राचीन ग्रीक इतिहासकार ने इसका गैंगरादई के नाम से उल्लेख किया है और इसकी राजधानी गैंगे बताया है जो कलकत्ता के पास दक्षिण में अवस्थित थी। इस संदर्भ में हम देखते हैं कि कलकत्ता से ३८ किलोमीटर उत्तर पूर्व में चौबीस परगना जिले में चन्द्रकेतुगढ़ अवस्थित है। जिसके अन्तर्गत वेराचम्पा, देवालया, शांतपुर, हादिपुर, जिक्रा, रानाखोला, घोरापोटा, धानपोटा, चुपरीझारा, मट्ठवाड़ी और गाजियातला हैं। इनमें बेराचम्पा में उत्खनन में ३०० ई. पू. के अवशेष प्राप्त हुए है जो इसे मौर्यकाल से जोड़ते हैं। यह गंगा के तट पर एक बंदरगाह था। यहाँ से विद्याधरी नदी १० मील दूर पर है जो आज मृतप्राय है। लेकिन वहां से समुद्र में जाने के लिए व्यापारिक मार्ग था जो वहाँ पर उत्खनन में Terra Kotta की यक्षिणी मूर्तियाँ निकली है एवं चीनी मिट्टी के बर्तन जिनमें ब्राह्मी और खरोष्टी लिपि के लेख लिखे मिले हैं तथा एक महत्वपूर्ण जिनमूर्ति मिली है और एक हाथी। जिसके विषय में श्री गौरीशंकर डे ने लिखा है कि—

Both the literary and archaeological evidences indicate that Bengal had an early association with Jainism. Jainism flourished in Bengal long before the Christian era and continued, in its full form, at least upto the 7th Century A.D. Yet, "the predominance of Jainism at one time in Bengal" is hardly in keeping with the very small number of images found representing that religion. Hence, any and every discovery of Jaina relics from this province deserves attention of archaeologists, historians, art-lovers and lay men alike. In this connection the torso of a

Tirthankara found in the ruins of Chandraketugarh, a wellknown archaeological site of West Bengal, deserves special mention.

The figure was originally found by Mr. Yar Ali Mandal living in the vicinity of Khana-Mihirer Dhibi. Mr. Mandal found it on the marshy land (Beder Bil).

Mr. Mandal also told me that he also found a small stone elephant from the same marshy land and made it over to an unknown person. I do not know if the said elephant was any part of the torso in my possession. Perhaps, it could give, if properly examined, a clue for the identification of the image since elephant is the cognisance of Ajitanatha.

This is a torso of a Tirthankara with srivatsa mark on the chest. Its nudity, the stiff straight pose of its arms hanging down by its sides, indicative of the Kayatsarga attitude, characteristic of the Jainas, unmistakably prove that it is the image of one of the Tirthankaras.

In the above mentioned contexts, the torso from Chandraketugarh, which has the closest resemblance with the Lohanipur Torso, represents the oldest Jaina image extant in Bengal. So the importance of the said image is indeed great.

बंगाल के २४ परगना जिले में भी प्राचीन जैन मूर्तियां मिली है जिसके विषय में लिखा है—

The present 24-Parganas represent one of the oldest parts of Bengal and was the meeting ground of different faiths.

A considerable number of Jaina images have been discovered from both the northern and southern parts of the district. It is probable that some *Jaina viharas* also existed here in the past.

Late D. K. Chakrabartty of the State Archaeological Gallery, West Bengal, referred to a terracotta-seal depicting a stupa and torana with a seated peacock upon it. He could not confidently associate the seal with Jainism as no definite Jaina objects were yet found from Chandraketugarh or its neighbourhood. But now there is no doubt that Chandraketugarh was a centre of Jainism. J.J. vol. xvii

दक्षिण २४ परगना के रायडीघी में आदिनाथ, पार्श्वनाथ और नेमीनाथ की नौवीं शताब्दी की मूर्तियाँ मिली है। खान मिहिरडिबी से तीर्थ शिखर, गर्भगृह और मण्डप मिले हैं जो प्रमाणित करते हैं कि यहाँ कभी प्राचीन मन्दिर था। हरिनारायनपुर, देउलपोटा, बोराल, अटधरा, नलगोरा आदि में भी अवशेष मिले हैं तथा अम्बिका देवी की भी मूर्ति मिली है। सुन्दरवन में गंगा के किनारे अनेक पंचतीर्थी मूर्तियाँ मिली थी जिन्हें बाहर प्रचार कर दिया गया है।

अशोकावदान में उल्लिखित है कि और दिव्यावदान से पता चलता है कि अशोक के समय में पुण्ड्रवर्द्धन में निर्ग्रन्थ बहुत शक्तिशाली थे। अशोका ने पुण्ड्रवर्द्धन में १८००० निर्ग्रन्थों की हत्या करवायी थी ऐसा वर्णन मिलता है।

That Jainism was in a flourishing condition in Pundravardhana in the 3rd century B.C. during the reign of Asoka is evident from another legend embodded in the *Divyavadana*.

This legend relates that the lay devotees of the Jaina community of Pundravardhana had painted a picture which had shown the Buddha falling at the feet of Jina. Being enraged at this news Asoka killed 18 thousand Ajivikas in a day (In Chiness translation, in place of Ajivikas, Nirgranthas have been mentioned).

मौर्य काल में बंगाल में निर्ग्रन्थ बहुत प्रभावशाली थे। मुर्शिदाबाद जिले के फरक्का में खुदाई में जैन आयागपट्ट जिसमें धर्मचक्र और त्रिरत्न बना है प्राप्त हुआ है जिसके विषय में पी. सी. दासगुप्ता ने लिखा है कि–

Thus, it will be found that the Nirgranthas gained a strong ground in Bengal as early as the age of the imperial Mauryas. As an emperor ruling from Pataliputra Asoka was well aware of the popularity of the religion of the Nirgrantha and the instution of the Ajivikas. He honoured diverse religious schools with a predilection for the doctrine of the Buddha in a country distinguished by the age-old civilization of deva-worshippers. As for Bengal the Divyavadana refers to the Nirgranthas of Pundravardhana during the life time of Asoka. It may be noted that very recently a terracota votive plaque visualizing the sacred wheel and the triratna flanked by what appears to be a goose has been unearthed at Farakka in Murshidabad district. On stylistic and stratigraphic grounds the object is datable to the Maurya-Sunga period. The plaque recalls the symbolic motifs of the Jaina Ayagapattas.

Jainism in Ancient Bengal. J.J. vol, xvii, No. 3, pg.82

मुरण्ड राजाओं का काल— ई. सन् की दूसरी शताब्दी में पूर्वी भारत में मुरण्ड राजाओं का अधिपत्य करीब २४० वर्षों तक रहा। जैन, ग्रीक तथा चीनी साहित्य में भी इन राजाओं का विवरण मिलता है। ये राजा जैन धर्म के समर्थक थे। ई. पू. दूसरी शताब्दी के भरहुत की एक वैदिक लिपि में पुण्ड्रवर्धन का उल्लेख किया गया है। मथुरा में एक शिलालेख प्राप्त होता है जो दूसरी शताब्दी का है उसमें किसी राढ़वासी द्वारा तीर्थंकर की मूर्त्ति उत्सर्ग करने की बात लिखी हुई है। इस विषय में Dr. R.C. Majumdar ने लिखा है–

An inscription discovered at Mathura but now in Calcutta Museum, records the errection of a Jaina image in the year 62 at the request of a Jaina monk who was an inhabitant of Rara. Rara is very probably Radha, a well-known variant of Radha (in Bengal) and the date is to be refered to the Kusana era and therefore equivalent to about 150 A.D.

गुप्तकाल–पहाड़पुर से प्राप्त गुप्तकाल का ताम्रपत्र बंगाल में गुप्तकाल में जैनधर्म के प्रभाव को पुष्ट करता है यहाँ के भूगर्भ में २६ विभिन्न आकार के जैन स्तूप व ताम्रपत्र भी प्राप्त हुए है। इस विषय में इतिहासकार डॉ. आ. सी. मजूमदार ने लिखा है–

One of the most important records on Jainism in Bengal is the copper plate inscription from Paharpur (Rajshahi) in Bangladesh. Dated in the Gupta era 159 (478-79A.D.) it records a gift of land by a Brahmin couple for a Jaina Vihara at Vata-Gohali. The Vihara, i.e. the monastic establishment, belonged to the followers of Nirgranthanatha Acarya Guhanandin of the Pancastupa section of Banaras. On the site of this ancient Jaina

Vihara was later on erected a Buddhist monument of outstanding plan and design which has been laid bare by excavation at Paharpur. It is possible that the great temple with the terraces and the paved platform in the centre was inspired by the symbolic construction of a Jaina shrine conforming to the architectonic type of a Caumukha. Such a suggestion was made by K.N. Dikshit, the excavator. "In this connection", says Prof. S.K. Saraswati, "we should also take into account a particular type of temples at Pagan in Burma, which may be described as an adaptation of Caumukha shrines of the Jainas."

The History of Bengal, edited by
Dr. R.C. Mazumdar, Dacca 1943, p.507

विश्व प्रसिद्ध भूगर्भ वेत्ता के. एन. दीक्षित के अनुसार पहाड़पुर में जैन विहार था। बंगला देश के पुरातत्ववेत्ता मोहम्मद शफीक आलम के अनुसार—

"The recently excavated structures were built in pre-Pal period. "Most probably the structure of temple was built by followers of Jain religion -Paharpur monastery. ."

जैन कल्पसूत्र एवं अन्य आगमों को गुप्त काल में सम्राट कुमारगुप्त के समय में लिपिबद्ध किया गया था। उस समय ताम्रलिप्त, कोटिवर्द्धन, पुण्ड्रवर्धन व खर्बट जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र थे। गुप्त राजाओं ने बंगाल को पराजित कर अपने सम्राज्य में शामिल कर लिया था। उस समय बंगाल में वर्मन राजाओं का अधिपत्य था। ये वर्मन राजा भारतीय इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। ये कौन थे, कहाँ से आये थे, इस विषय में इतिहास मौन है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये द्रविण जाति के थे तथा

इनके पूर्वज सिन्धु घाटी से आये थे। बंगाल को अपने आधीन करने के पश्चात् गुप्तसाम्राज्य एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया और ताम्रलिप्त समुद्री व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र।

In the early phase of Gupta expansion, they defeated Bengal and annexed her. Two Varmans kings of Bangla are defeated. This is the first mention of the Varmans. As Bengal came under their rule, Tamralipti again served as a major port. Once again under the Guptas, India became a great nation, in strength, culture, spirituality and science.

The Varmans as will be seen are very active throughout Indian history. They come from Dravir lines as in Bengal, and South India. Were the Varmans big players in the anciant Indus civilization?

ऐसा माना जाता है कि गुप्त सम्राट्र समुद्रगुप्त ने बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती प्रदेशों से होते हुए दक्षिण अभियान किया था।

शशांक– ६ठी शताब्दी के लेखों से पता चलता है कि गौड़ जिसमें वर्तमान मुर्शिदाबाद के राढ़ और बागरी क्षेत्र सम्मिलित थे गुप्त साम्राज्य के अधीन था। मुखारी, कलचूरी और कामरूप के राजाओं के मध्य युद्धों से गुप्तसाम्राज्य लड़खड़ाने लगा उस समय शशांक जो अन्तिम गुप्तसम्राट महासेन गुप्त का सामन्त था उसने प्रभाकर वर्द्धन के समय बंगाल में शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। कर्ण सुवर्ण जो मुर्शिदाबाद के निकट है उसको राजधानी बनाया और शीघ्र ही सारे बंगाल पर कब्जा करके उड़ीसा को भी जीत लिया। कई विद्वानों के अनुसार वह महासेनगुप्त का लड़का या भतीजा था लेकिन ज्यादातर विद्वान उसे महासेनगुप्त का नौसेना अधिकारी बताते हैं।

"Sasanka occupies a prominent place in the history of Bengal. He is the first known king of Bengal who extended his kingdom beyond the geographical boundaries of the present State of West Bengal. He was a vassal chief of the Maukharis of Magadha. It has been said that he was either a son or a nephew of Mahasena gupta, thereby a later Gupta himself. But most scholars think that he was a vassal chief under Mahasenagupta though not related to the latter by kingship ties. There is hardly any doubt that the whole of Radha, including some portions of Vanga, like Bagri, were within his domains. . ."

कुछ विद्वानों का मानना है कि ७वीं शताब्दी में शशांक ने बौद्धों की अपेक्षा जैनियों पर ज्यादा अत्याचार किये।

King Sasanka of Gauda has been accused for persecuting both the Buddhists and the Jainas. However from a perusal of the evidence of *Aryamanjusrimulakalpa,* it seems that the torture and persecution suffered by the Jainas were more painful than that suffered by the Buddhists. Perhaps the numerical superiority of the Jainas to the Buddhist was the cause of heavier punishment for the Jainas. J.J. Vol. XVI No.3

कुछ विद्वानों का मानना है कि शशांक पहले जैन था बाद में उसने शैव धर्म अपनाया। उसकी तुलना प्रसिद्ध पल्लव राजा महेन्द्र वर्मन से की जा सकती है जो पहले जैन था लेकिन बाद में शैव बनने के बाद उसने हजारों जैनियों को मरवाया। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जो धर्म जिस प्राचीन धर्म से निकलता है उसी का वह कट्टर दुश्मन होता है।

But Sasanka was a bitter enemy of the Jainas. The author of *Arya-manjusri-mula-kalpa* states that Sasanka has destroyed the rest houses of the Jainas throughout the world i.e. his kingdom. The fact that Sasanka was a follower of the sect founded by Mahavira, (i.e. Jainism) and that he persecuted the Jainas should not stand in the way of the proposed hypothesis or suggestions. The famous Pallava king Mahendra Varman was originally a Jaina, but when he was converted to Saivism by the saint called Appar, he did not hesitate to slay thousands of Jainas who refused to follow him in matter of religion. It is also a well-known fact that in India Hindus converted to Islam persecuted their former co-religionists more severely than the born-Muslims.

J.J. Vol. XVI No.3

जब प्रभाकर वर्मन अपने राज्य की सीमा दक्षिण और पश्चिम में बढ़ा रहा था उस समय बंगाल और असम में दो शक्तिशाली सम्राज्य स्थापित हुए। गुप्त राजाओं के पतन के बाद गौड़ की गद्दी पर शशांक बैठा उसने अपनी राजधानी कर्ण सुवर्ण को बनाया जो मुर्शिदाबाद के निकट है और शीघ्र ही एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। उसने प्रभाकर वर्धन के जमाता मौखरी नरेश गृह वर्मा को मार दिया उसके बाद राज्य वर्धन भी मारा गया। राज्य वर्धन के बाद उसके भाई हर्ष वर्धन कन्नौज की गद्दी पर बैठा और उसने शशांक के विरुद्ध कामरूप के राजा भास्कर वर्मा से मैत्री संधि कर ली। यद्यपि हर्ष वर्धन शशांक के जीवित रहते उसे परास्त नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के बाद हर्ष वर्धन ने पश्चिमी बंगाल को जीत लिया और पूर्वी दक्षिण और उत्तरी बंगाल कामरूप के राजा भास्कर वर्मन के हाथ लगे।

चीनी यात्री ह्वेनसांग की हर्ष वर्धन से भेट पश्चिम बंगाल में हुई थी। उसने इस सम्राट की बहुत प्रशंसा की है। ह्वेनसांग शशांक के बाद बंगाल में आया। उसके विवरणों से स्पष्ट है कि जैनियों के ऊपर हुए अत्याचारों के बावजूद भी बंगाल के अनेक स्थानों पर उनकी संख्या सबसे अधिक थी। जिनमें पौड्र वर्धन और समतट आदि प्रमुख थे। शशांक की राजधानी कर्ण-सुवर्ण के निकट ही मुर्शिदाबाद जिले में रक्त मृतिका नामक बौद्ध विहार बड़ा प्रसिद्ध बौद्ध विहार था। जिसका विवरण ह्वेनसांग ने किया है।

Hiuen Tsang's account of Karnasubarna :

Karnasubarna was one of the ancient capitals of Sasanka, the first independent ruler of Bengal, who ruled over the kingdom of Gouda (old name of Bengal) from 600-638 AD. It also contains the ruins of the ancient university of Raktamirtika Mahavihar, a leading educational institute of its time visited by the famous Chinese traveller Hiuen Tsang.

The account left by Hiuen Tsang, in his itinerary Xiyu Ji, is the only written record of the flourshing urban settlement of Karnasubarna and Raktamrttika Vihar. According to his account Hiuen Tsang moved from Tamralipti (Tan-mo-li-ti), currently Tamluk in Medinipur. Raktamrttika (Lo-to-mi-chih) Vihar.

Hiuen-Tsang gives a graphic description of Karnasuvarna, which acquaints us with the locality and its people. According to him "the country was well inhabited and the people were very rich. The land was low and moist, farming operations were regular, flowers and fruits were abundant, the climate was temperate and the people were of good character and were

patrons of learing." This description indicates the prosperous state of the country.

बौद्ध साहित्य आर्य मंजुश्री कल्प के अनुसार शशांक शैव धर्मी था जिसने बंगाल से बौद्धों और जैनों को पलायन करने पर मजबूर किया। उसके अत्याचारों के फलस्वरूप जैनों को राजस्थान और गुजरात की तरफ जाना पड़ा।

King Sasanka of Gauda has been accused for persecuting both the Buddhists and the Jainas. However from a perusal of the evidence of Aryamanjusrimulakalpa, it seems that the torture and persecution suffered by the Jainas were more painful than that suffered by the Buddhists. Perhaps the numerical superiority of the Jainas to the Buddhist was the cause of heavier punishment for the Jainas. Chitranjan Pal

जैनियों पर बढ़ते अत्याचारों के कारण जब जैनियों ने पूर्वांचल का परित्याग कर दिया था उस समय मगध व राढ़ अंचल के महान तीर्थों की जिन-प्रतिमाओं को पश्चिम भारत में ले जाकर स्थापित कर दिया एवं उन सब स्थानों के नामकरण पूर्वांचलों के तीर्थों के नाम पर कर दिए गए। जैसे—

१. नन्दीवर्द्धन प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुण्ड की भगवान महावीर की मूर्त्ति नान्दिया में है।

२. ब्राह्मणकुण्ड की जिनमूर्त्ति ब्राह्मणवाड़ा में है।

३. भगवान महावीर के दीक्षा-स्थल की मूर्त्ति मुण्ड-स्थल में है।

४. दीपावली के दिन जिस स्थान पर भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया उस पावापुरी की जिनमूत्ति दियाना में है।

५. वर्धमान की प्रतिमा वढ़वाण में है।

६. कोटिवर्ष नगर की कोटिक गच्छ की जिन-प्रतिमा कोटयार्क खड़ायता बीजापुर में है।

७. ऋजुबालिका की भगवान महावीर की सिद्ध स्थान की मूर्त्ति नाणा (नाड़ा) में है।

जैन परम्परा का इतिहास, प्रकरण ३५, पृष्ठ १८२

बंगाल में जो निदर्शन बचे रह गये उन्हें या तो नष्ट कर दिया गया या उनका स्वरूप बौद्ध या शैव में परिवर्तित कर दिया गया।

We shall not be far wrong, if we suppose, that the torture and the persecution suffered by the Nirgranthas or Jainas were not less severe than that experienced by the Buddhists. For the Gauda king had destroyed all the 'Vasatis' or living places and rest houses of the Jainas through out the world i.e. through out his kingdom and expelled them (i.e. Nirgranthas or Jainas) there from. Further, it is this persecution, which is one of the many factors that lie behind the sudden eclipse of Jainism from Bengal for a period spreading over a century or more.

J.J. July 1981, p.12

जिस राढ़ अंचल के साथ जैन तीर्थंकरों और श्रमणों का युगों-युगों से अविच्छिन्न सम्पर्क था, जहाँ प्रागैतिहासिक काल से ही तीर्थंकर परिभ्रमण करने आते थे और अन्ततः निर्वाण प्राप्त करते थे उसी प्राचीन तीर्थ-भूमियों के साथ सम्पर्क रखने में जैन समाज असमर्थ हो गया।

तित्थयर, जुलाई १९८५

शशांक के बाद बंगाल की राजनैतिक अवस्था डावाँडोल हो गई। बाद में हर्षवर्द्धन और भास्कर वर्द्धन नें बंगाल को जीत लिया। ८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शैलवंश के राजा पौंड्र ने उत्तरी बंगाल जीता। कन्नौज के राजा यशोवर्धन ने बंगाल पर अपनी विजय पताका फैलायी। उसके बाद कश्मीर के राजा ललिता दित्य ने भी बंगाल तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। ८वीं शताब्दी के मध्य में हर्ष नाम के कामरूप के राजा ने बंगाल को जीता। इसके बाद अव्यवस्था फैल गयी उस समय गोपाल को राजा चुना गया जिसने बंगाल को संगठित किया और पालवंश का प्रारम्भ हुआ। गोपाल के बाद धर्मपाल राजा बना जिसने विक्रमशिला की स्थापना की। इसके शासन काल में पाल साम्राज्य प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँच गया था। उसके आधीन जो मंडल अधिपति थे उसमें एक का नाम 'व्याघरतति मंडल' पुंड्र वर्धन भुक्ति में सम्मिलित था जो कि मुर्शिदाबाद का बागरी क्षेत्र है ऐसा कनिंघम का मानना है। १०वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजा विग्रहपाल के समय कम्बोज के राजा ने बंगाल को जीता किन्तु विग्रहराज के बेटे महिपाल ने पुनः बंगाल पर अधिकार कर लिया। पुरातात्विक खोजों से यह पता चलता है कि महिपाल के अधीन उत्तर राढ़ था जिसमें मुर्शिदाबाद का इलाका सम्मिलित था। अजीमगंज से पाँच मील दूर उत्तर-पश्चिम में सागर दीघी पुलिस स्टेशन, जो कि जंगीपुर सबडिवीजन में है, उसका नाम भी महिपाल था। यहाँ एक बड़ा स्तूप मिला जिसकी खुदाई में टेराकोटा और पत्थर की मूर्तियाँ इत्यादि मिली है जो पाल और सेन काल के बताये जाते हैं। यह जगह इतिहासकारों के अनुसार महिपाल की राजधानी थी। सागर दीघी जो अजीमगंज से दस मील पश्चिम-उत्तर में है तथा महिपाल गाँव से पाँच मील पर है। यहाँ पर एक बड़ा विशाल झील है जिसके दक्षिणी किनारे पर किसी मुस्लिम संत की एक दरगाह है जिसको देखने से पता चलता है कि यह पूर्व में कोई मंदिर था।

लगभग ७० साल पूर्व निखिल नाथ राय ने एक पत्थर पर लिखे लेख की खोज की थी जो अब वहाँ पर नहीं है। यह कहा जाता है कि इस लेख को राजा महिपाल ने लिखवाया था। अजीमगंज से ७ मील दूर उत्तर में लालबाग सब डिविजन के अन्तर्गत गियासबाग जिसे पहले बद्रीहाट कहा जाता था और जो महिपाल गाँव से ५ मील दूर है वहाँ पर भी एक मुस्लिम गुम्बद मिला है जिसके प्राचीन पत्थर पालकालीन किसी मंदिर के प्रतीत होते है। लियर्ट के अनुसार यहाँ जो प्राचीन नगर की उपस्थिति का भान होता है वह श्रमण संस्कृति की थी। बेलावा के ताम्रलेख से यह पता चलता है कि महिपाल के आधीन बंगलादेश के अनेक क्षेत्र भी थे। कुछ पाल राजाओं को छोड़कर बाकी सब श्रमण संस्कृति से प्रभावित थे और इस काल में जैन मंदिर और मूर्तियों का निर्माण भी प्रचुरता से हुआ था। कांदी पुलिस स्टेशन क्षेत्र में जेमो गाँव में अनेक मंदिर जो आज शैव मंदिरों में परिवर्तित हो गये है। राजबाड़ी-डांगा से भी अनेक नौवीं, दसवीं शताब्दी की मूर्तियाँ मिली है।

अमरकुण्ड गाँव में भी अनेक जिन मूर्तियाँ विष्णु के रूप में पूजी जाती है। महिपाल के बेटे नयपाल को गंगेईदेव पराजित किया। गंगेईदेव के पुत्र कर्ण ने पश्चिम राढ़ व पूर्व बंगाल को जीता था। नयपाल के पुत्रों में परस्पर वैमनस्य के कारण कैवर्थ जाति के दिव्यराजा ने बंगाल में अपना अधिपत्य जमा लिया। परस्पर युद्धों से बंगाल अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। रामपाल ने पुनः अपने पैतृक राज्य को जीता। इस समय दक्षिण बंगाल में चन्द्रवंशीय राजाओं का राज्य था। पश्चिमी बंगाल में मल्लवंश का प्रारम्भ ७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। जगतमल के समय इनकी राजधानी विष्णुपुर बन गयी। रामपाल के पुत्र मदनपाल को राढ़ के राजा विजयसेन ने हराकर बंगाल में सेनवंश का प्रारम्भ किया। विजयसेन के पुत्र बल्लालसेन तथा उसके बाद उसका बेटा लक्ष्मण सेन गद्दी पर बैठा जिसने बनारस और

इलाहाबाद तक अपना साम्राज्य स्थापित किया। लक्ष्मणसेन ने अपने पिता और पितामह के गौड़, कामरूप और कलिंग के सैनिक अभियानों में सैनिक शिक्षा पायी थी। इन राज्यों के जीतने का जो श्रेय उसे दिया जाता है, वह उसके अपने राज्यकाल की विजयों का न होकर सम्भवतः उन्हीं अभियानों का है। किन्तु राजा होने के पश्चात् भी उसे कठिन सैनिक अभियानों का नेतृत्व करना पड़ा। दक्षिण में उसने उड़ीसा के विरुद्ध कुछ सफलता प्राप्त की और पुरी में अपना विजयस्तम्भ स्थापित किया। किन्तु उसकी सबसे बड़ी लड़ाई गाहड़वालों के साथ हुई। उसने उसमें महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की और वह अपनी विजयी सेना बनारस और इलाहाबाद तक ले गया। कहा जाता है कि उन स्थानों में भी उसने अपने दो विजयस्तम्भ खड़े किये थे। निस्सन्देह लक्ष्मणसेन के अधीन बिहार का काफी बड़ा क्षेत्र था। उत्तरी बिहार में आज भी लक्ष्मण सम्वत् नामक एक संवत् प्रचलित है। लक्ष्मणसेन के बाद भी इस संवत् के प्रचलन का अभिलिखित प्रमाण उपलब्ध हुआ है। लक्ष्मणसेन की राजधानी नवद्वीप में थी।

लक्ष्मणसेन कवियों के आश्रयदाता थे और उनके दरबार में अनेक कवि रहते थे जिनमें जयदेव उल्लेखनीय है। वह स्वयं भी कवि था और अपने पिता की एक अधूरी परन्तु विद्वत्तापूर्ण पुस्तक पूरी की थी। उनके समकालीन एक मुसलमान इतिहासकार ने उसनी दान एवं हृदय और बुद्धि के अन्य गुणों की भूरि-भूरि सराहना की है। उसे उसने भारतीय शासकों में वैसा ही प्रमुख बताया है जैसा कि मुसलमानी संसार में खलीफा होता था। उसने उसके निधन के पश्चात् उसकी मुक्ति की प्रार्थना की है। एक मुसलमान द्वारा गैर मुसलमान के सम्बन्ध में लिखी यह एक असाधारण बात है। परन्तु बुढ़ापे में बख्तियार खिलजी के धोखे से किये आक्रमण में लक्ष्मण सेन को पराजित होकर भागना पड़ा। उड़ीसा के राजा अनंगभीम

तृतीय के पुत्र नरसिंह प्रथम ने १२४३ ई. में बंगाल के मुस्लिम राज्य पर आक्रमण कर हरा दिया लेकिन वह वापिस लौट गया। उसके पुत्र नरसिंह द्वितीय ने मुसलमानों को पराजित किया था।

लक्ष्मणावती नगरी के राजा लक्ष्मण सेन और उनके मंत्रीधर की कहानी मेरुतुंगाचार्य ने अपने 'प्रबन्ध चिन्तापणि' ग्रन्थ में बड़े सुन्दर ढंग से वर्णित की है। राजा के चण्डाल कन्या के प्रेम में आसक्त हो जाने पर उमापति धर जिस श्लोक द्वारा उन्हें सावधान करते हैं वह अत्यन्त सुन्दर ढंग से इस ग्रन्थ में वर्णित है।

१३५० ई. में राजशेखर सूरिकृत 'प्रबन्ध कोष' में लक्ष्मणवती नगरी की कथा है। वहाँ के राजा लक्ष्मण सेन हैं और दुर्ग दुर्गम है।

जैनाचार्यों के अतिरिक्त भी राजपूताना के डिंगल साहित्य में लक्ष्मण सेन का नाम पहुँच गया था। १४५९ ई. में कवि दामों ने 'लक्ष्मण सेन पद्मावती च उपर्हद' नाम से काव्य रचना की। उसमें लक्ष्मण सेन और पद्मावती की प्रेम कहानी वर्णित है।

प्रबन्ध कोष में लिखा है—गौड़ देश में लक्ष्मणावती नगर में धर्म नामक राजा थे। उनकी सभा में कविराज वाक्पति सभासद् थे। जैनाचार्य बप्पभट्टी की विद्या और गुणों से सन्तुष्ट होकर लक्ष्मणावती के राजा उनका बहुत सम्मान करते थे।

वप्पभट्टि राजा धर्म के आग्रह पर लक्ष्मणावती नगर में ही रह गए। गोपगिरि के राजा आम उन्हें लौटा लाने के लिये लक्ष्मणावती गए। आम राजा ने राजा लक्ष्मण सेन की वार-स्त्री के घर ही रात्रि यापन की थी।

उस समय गौड़ लक्ष्मणावती नगर में एक असाधारण बौद्ध पण्डित थे। वप्पभट्टी ने उन्हें विद्यावल में अजेय जानकर कौशल से पराभूत किया।

राजा यशोधर्म ने लक्ष्मणावती जय कर राजा धर्म की हत्या कर डाली एवं वाक्पति कविराज को बन्दी बना लिया। बन्दीगृह में कविराज वाक्पति ने 'गौड़-वध' काव्य की रचना की। वहाँ से मुक्त होकर वे वप्पभट्टी के पास गए और वहाँ के राजा आम को महामोह विजय नामक प्राकृत काव्य सुनाकर संतुष्ट किया। फलतः खूब पुरस्कृत हुए।

शायद वाक्पति पहले महाभारत काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे किन्तु द्वैपायन ने आकर उन्हें भारत रचना और संस्कृत भाषा में रचना करने के लिये मना कर दिया।

अतः उन्होंने 'गौड़वध' नामक प्राकृत ग्रन्थ की रचना की।

पूर्व देश में लक्ष्मणावती नगर में लक्ष्मण सेन नामक प्रतापी और न्यायी राजा थे। उनके मंत्री थे प्रज्ञाविक्रमभक्तिसार कुमारदेव। वाराणसीराज गोविन्द चन्द्र के पुत्र जयचन्द्र के लक्ष्मणावती पर आक्रमण करने पर कुमारदेव के बुद्धिबल से लक्ष्मण सेन के साथ जयचन्द्र की शत्रुता मित्रता में बदल गयी।

जैन ग्रन्थों में इस विषय पर ऐसे बहुत से आख्यान मिलते हैं जिसमें गौड़ लक्ष्मणावती आदि का उल्लेख है।

इन सब कारणों से लगता है कि सेनवंश के समय जैनों के साथ गौड़ बंगाल का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

माया निर्युक्ति– ११वीं शताब्दी में २० श्लोक का एक पद्य मिला है जिसका नाम 'माया निर्युक्ति' है। तिब्बती अनुवादकों के अनुसार यह बौद्ध धर्म के वज्रयान शाखा के अद्वयवज्र का लिखा हुआ है। लेखक का निवास स्थान उत्तर बंगाल के देवीकोट विहार में था। जो दिनाजपुर से १८ मील पर अवस्थित है। प्रौ. एच.पी. शास्त्री ने 'माया निर्युक्ति' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि–

The central idea of *mayanirukti,* expounded by H.P. Sastri is as follows :

"It (*Mayanirukti)* treats of illusion and speaks of *maya* as *magic.* Some consider it to be magic and some think it to be true. For the satisfaction of the illusions, the Yogin may enjoy all good things of the world which come to him of their own accord, because he enjoys them as *maya."*

"But a true Yogin should have the Earth for his bed, the quarters for his cloth and alms for his food. He should have forbearance for all phenomena because they are not produced and his benevolence should be perennial."

इस प्रकार हम देखते हैं कि माया निर्युक्ति में एक सच्चे योगी के लिए जो आचार बताये गये है वह जैन साधुओं की चर्या को स्पष्ट करते हैं यह कहा जा सकता है कि एक सच्चे योगी की विशेषताओं को लिखते समय अद्वैयव्रज के सामने निर्ग्रन्थ साधु का दृश्य रहा होगा। उनका निवास स्थान देवीकोट (बानगढ़) में था जो जैन धर्म का प्राचीन स्थान था। प्रो. चित्तरंजन पाल ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि–

In *maya nirukti,* the criteria set for a true Yogin of 'ascetic' by Advayavajra are found in the following couplet.

"mahi sayya, diso vaso bhiksa bhaktam ca bhojanam / ajata dharmata ksantih kripana bhagavahini" //

So we may conclude without hesitation that Advayavajra in depicting the characteristics of true Yogins or ascetics had be-

fore him the portrait of the 'Jinakalpi' or advanced Digambara ascetics who were well-known for their hard and strict monastic life and who were, perhaps, very numerous at "Devakota/ Devikota at Kotivarsa Visaya in the Bhukti of Pundravandhana, (North Bengal) during the eleventh century A.D.

मुर्शिदाबाद

भगवान महावीर ने जिस राढ़ अंचल में विचरण किया था, जो भूमि उनके स्पर्श के पवित्र हुई थी, उसी अंचल का एक हिस्सा आज का मुर्शिदाबाद है। भागीरथी के किनारों पर अवस्थित मुर्शिदाबाद जिले का इतिहास हमें उस काल की विषम परिस्थितियों, श्रमण संस्कृति के प्रभाव, क्षत्रिय राजाओं की वीरता, वैभव और उत्थान के दर्शन कराता है। भगवान महावीर के समय इस स्थान को कोटिवर्ष कहा जाता था और यहां के किरात राजा ने भगवान महावीर से प्रवज्या ग्रहण की थी। परवर्ती काल में उत्तर बंगाल के कोटपुर को भी कोटिवर्ष कहा गया परन्तु प्राचीन कोटिवर्ष यहीं पर था। जिसका प्रमाण है कि यह क्षेत्र अतिप्राचीन काल से महत्त्वपूर्ण तीर्थ क्षेत्र रहा तथा उत्खनन में अतिप्राचीन अवशेष भी यहीं से प्राप्त हुए है। बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुतर-निकाय' में अंग जनपद का वर्णन मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अंग जनपद की पूर्वी और उत्तरी सीमा गंगा और भागीरथी थी। अतः यह माना जाता है कि बौद्धों के वर्णित अंग में उत्तर राढ़ क्षेत्र, जिसमें मुर्शिदाबाद है, सम्मिलित था। महाभारत में भी वर्णित अंग-देश में बंग भी सम्मिलित था। जिसके पश्चिम में भागीरथी और पूर्व में मेघना और पद्मा नदियाँ वर्णित है। अतः महाभारत के अंगदेश में आज का पूरा मुर्शिदाबाद जिला शामिल था। श्रेणिक बिम्बसार ने अंगदेश को जीता था और उनके अधीन राढ़ भी था। नंद-वंश के राजाओं के विषय में डायोडोरस

ने भी लिखा है कि उनका प्रभाव प्राची और 'गंगरादयी' क्षेत्र में था। खारवेल के हत्थीगुम्फा शिलालेख भी इसकी पुष्टि करते हैं। महास्थानगढ़ से प्राप्त अशोका से पूर्व का शिलालेख इस बात का प्रमाण है कि मौर्यकाल में भी यह क्षेत्र मौर्य राजाओं के अधीन था। उस समय बंगाल और बिहार खनिज और कृषि संपदा से समृद्ध राज्य थे। मगध का सारा व्यापार गंगा से होते हुए बंगाल की खाड़ी से होता था अतः व्यापार का प्रमुख केन्द्र बंगाल था। मुर्शिदाबाद के कटवा से सागरदीघी तक का क्षेत्र व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था जिसपर हर बड़ा सम्राट अपना आधिपत्य रखना चाहता था। यहाँ का काँसा बहुत ही प्रसिद्ध है। आज भी काँसे के बर्तन बनाने वाले शिल्पी इस क्षेत्र में रहते हैं। कपास के वस्त्र बनाने वाले तांती एवं शिल्पी आदि इस क्षेत्र के मूल निवासी थे जिनका इस क्षेत्र की समृद्धि में बड़ा योगदान था। महाराज सम्प्रति ने यहाँ अनेक मन्दिर और मूर्तियों का निर्माण कराया था। आज का 'किरिटेश्वरी देवी' का मन्दिर मौर्य कालीन जैन मन्दिर था। गुप्त साम्राज्य के आधीन गौढ़ जिसके अन्तर्गत वर्तमान मुर्शिदाबाद के राढ़ और बागरी क्षेत्र, भी सम्मिलित थे।

फरक्का से प्राप्त मौर्य एवं शुंग काल के प्राचीन जैन निदर्शन इस क्षेत्र में निर्ग्रन्थ प्रभाव को परिलक्षित करते हैं। शशांक के साम्राज्य की राजधानी कर्ण-सुवर्ण मुर्शिदाबाद जिले में ही अवस्थित थी। ह्वेनसांग ने यहाँ का जो वर्णन किया है उसके अनुसार मुर्शिदाबाद सम्राट हर्षवर्धन के साम्राज्य के अन्तर्गत था यहाँ पचास देव मन्दिर थे जहाँ दूध भी व्यवहार नहीं होता था यह वर्णन जैन धर्म के प्रभाव को दर्शाता है। मुर्शिदाबाद के उत्तर में गौड़ राज्य था जहाँ के राजा धर्मपाल आचार्य बप्पभट्ट सूरि के समय हुए थे। बप्पभट्ट सूरि अपने समय के बहुत ही महान और प्रभावक आचार्य हुए। वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मोढ़ गच्छ

के थे। मुनि जिनप्रभु सूरिजी के अनुसार उन्होंने भगवान महावीर के १३०० साल बाद मथुरा के स्तूपों का जिर्णोद्वार कराया था। १३वीं शताब्दी में आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित 'प्रभावक चरित्र' में जिसमें २२ आचार्यों के चरित्र हैं बप्पभट्ट सूरि के बहुआयामी व्यक्तित्व के विषय में जानकारी मिलती है। उनके अनुसार बप्पभट्ट सूरि का एक दूसरा नाम भद्रकीर्ति भी था और उन्हें वादीकुंजरकेसरी की उपाधि से विभूषित किया गया था।

"Bappabhattir bhadrakirtir vadi Kunjarakesari Brahmacari Gajavaroraja pujita ityapt."

The couplet means that Bappabhattisuri had a second name, Bhadrakirti; he was proficient in dialectics, he had vanquished a disputant, obtained for himself, the grand title "the lion who defeated the elephant in debate." he was the greatest Brahmacari or the most punctilious observer of the vows of chastity among the monks and was honoured by the royal personalities of the time.

१३४८ ई. में राजशेखर सूरि प्रबन्ध कोश में भी हमें बप्पभट्ट सूरि का चरित्र मिलता था। दीक्षा के बाद वो गोपगिरी के राजकुमार आम के सम्पर्क में आये और आम उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए। कन्नौज का राजा बनने के बाद आम उन्हें अपने दरबार में ले आये। एक दिन वो चुपचाप आम के साम्राज्य से निकलकर पूर्व में गौढ़ देश की राजधानी लक्ष्मणावती नगरी में आये जहाँ राजा धर्म राज्य करते थे। वाक्पति राज, जो राजा धर्म के राजदरबारी थे, बप्पभट्ट सूरि को राजदरबार में ले गये। राजा धर्म बप्पभट्ट सूरि की विद्वता से बहुत प्रभावित हुए और उनके सम्पर्क से उन्होंने जैन धर्म स्वीकार किया। This attitude of

Dharmapala to Bappabhatti and to his faith was construed as conversion of Dharmapala to Jainism. उन्होंने राजा धर्म की सभा में वर्धन कुंजर नामक बौद्ध विद्वान को पराजित किया जिसके फलस्वरूप राजा ने उन्हें 'वादीकुंजर केशरी' का खिताब दिया था।

It has been already stated that Bappabhatti was invited by king Dharmapala to enter into a religious debate with a great Buddhist scholar Vardhanakunjara whom he eventually defeated and earned for himself the grand designation of *"Vadi Kunjara Kesari"* the lion who defeated the elephant in argument.

Mrs. Stevenson, Heart of Jainism.

बप्पभट्ट सूरि की अनुपस्थिति से राजा आम को बहुत दुःख हुआ उन्होंने अपने अनुचरों को लक्ष्मणावती नगरी में सूरिजी को लाने भेजा पर उनके इन्कार करने पर वे स्वयं वेष बदलकर यहाँ आये और अन्त में उनकों ले जाने में सफल हुए। वापिस लौटने पर बप्पभट्ट सूरि अपने गुरू के पास गये। आचार्य सिद्धसेन ने अपने गच्छ का पूर्ण उत्तरदायित्व बप्पभट्ट सूरि को सौंप दिया।

बौद्ध विद्वान वर्धन कुंजर कौन थे और इस अख्यान का क्या ऐतिहासिक महत्व है इसका विश्लेषण करते हुए प्रो. चित्तरंजन पाल ने लिखा है– The present writer is of opinion that Vardhana Kunjara of Jaina tradition and Purnavardhana of Lama Taranatha's book is identical and the same person. Lama Taranatha in his famous book "History of Buddhism in India" has put up a list of Buddhist preachers, teachers and scholars who illumunated the horizon of Eastern India during the reign of Dharmapala. In that list Purnavardhana occupies a pre-eminent place among the Bud-

dhist Acaryas. And to Purnavardhana Tibetan Tanjur attributes the authorship of a commentary on Abhidharmakosa and an abridged version of the same. It seems that Vardhanakunjara of Jaina tradition and Taranatha's Purnavardhana is one and inentical person and this misfortune being defeated by Jaina Acarya Bappabhattisuri.

इतिहासकारों के अनुसार राजा धर्म जिनके दरबार में बप्पभट्ट सूरि का बहुत सम्मान था वह और कोई नहीं पालवंश के राजा धर्म ही थे। यद्यपि ये कहा जाता है धर्मपाल बप्पभट्ट सूरि के प्रभाव में जैन बन गया लेकिन मेरा मानना है कि वह प्रारम्भ से ही जैन धर्मी थे तभी बप्पभट्ट सूरि का सम्मान करते थे। इतिहास गवाह है कि एक जैन राजा ही सब धर्मों को सरक्षण दे सकता है।

In fact, the long sojourn of Bappabhatti to Bengal, the vain but bold claim of conversion of Dharmapala to Jaina faith, the discomfiture of a Buddhist scholar in a religious debate all these facts unerringly point to the vigorous existence of the Jaina community in an age when Buddhism was in resurgence in Bengal.

'वसन्तविलास' के दशम सर्ग में वर्णित है कि चालुक्य राज्य के मंत्री वस्तुपाल द्वारा तीर्थयात्रा संघ निकाला गया जिसमें गौड़देश के संघपति भी शामिल हुए थे। ८८८ शताब्दी के ताम्रलेख में 'यश-तिलक' चम्पू के लेखक सोमदेव को गौड़देश का साधू बताया गया है। सोमदेव ने 'यश तिलक' में ताम्रलिप्त को गौड़ मंडल के अन्तर्गत बताया है। अतः मध्य बंगाल के राढ़ अंचल का मुर्शिदाबाद क्षेत्र भी गौड़ साम्राज्य में था।

इस प्रकार सातवीं शताब्दी के बाद भारत के इतिहास में एक बहुत बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है, विदेशी आक्रमणकारियों का

भारत पर आक्रमण और यहाँ अपने शासन का विस्तार करना जिसका प्रमुख कारण यदि निरपेक्षरूप से देखा जाय तो ब्राह्मण धर्म के प्रभाव का विस्तार तथा श्रमण संस्कृति का ह्रास रहा है। दूसरे शब्दों में कहे तो ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ना और क्षत्रियों का प्रभुत्व कम होना। छुआ-छूत, जाति-प्रथा और कर्म काण्डों का बोलबाला बढ़ गया। लोग भौतिक आवश्यकताओं के लिए यज्ञ में बलि देने एवं मंत्र-तंत्र की तरफ झुकने लगे। समाज में असमानता की जड़े गहरी होती चली गई इससे सामाजिक व्यवस्था चरमरा गयी। क्षत्रियों का वर्चस्व कम होने के कारण प्रजा-वत्सल्यता की भावना कम हो गयी। जो क्षत्रिय राजा प्रजा के संरक्षक होते थे वह ब्राह्मणों के प्रभाव में जन हितों की अनदेखी करने लगे। उनमें स्वार्थ की भावना भर गयी। परिणामस्वरूप भारत में विदेशी सत्ता के पांव जमने लगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि जिस उच्चकोटि की श्रमण परम्पराओं का आदिकाल से निर्वाहन हो रहा था उसका स्थान अब हिंसा, भीरूता, कायरता और स्वार्थ ने ले लिया। जो सिकन्दर प्राच्य देशों के श्रमण संस्कृति के राजाओं के बल और साहस से घबराकर वापिस लौट गया उनके उस वैभव और पराक्रम का स्थान धोखे बाजी, बेइमानी और दुराचारिता में बदल गया। जनसाधारण तथा छोटी जाति वालों को अवहेलना का शिकार बनना पड़ा। वीरों की अहिंसा कायरों की हिंसा में परिवर्तित होने लगी और भयंकर परिणाम सामने आये। जिस भारत में कभी भी विदेशी आक्रान्ताओं के पांव नहीं जम सके वहां के लोगों को सदियों तक गुलामी की जंजीर पहननी पड़ी। बंगाल में इसका प्रारम्भ राजा लक्ष्मणसेन की धोखे से हुई पराजय से हुआ। बख्तियार खिलजी द्वारा नदिया पर कब्जा करने के बाद लक्ष्मण सेन पूर्व बंगाल की तरफ सरक गये उनके साथ यहाँ के शिल्पीगण भी पूर्व बंगाल की तरफ चले गये और कुछ पश्चिमी भारत में चले गये। नदिया के बाद बख्तियार खिलजी ने गौड़ और लखनौटी

पर अधिकार किया। १२०६ ई० में उसने उत्तर राढ़ पर आक्रमण किया और उसका कुछ क्षेत्र उसने जीत लिया। मुहम्मद शेरान खिलजी वहां का सैनिक गवर्नर बना। १२१३ ई० से १२२७ ई० में गयासुद्दीन इवाज खिलजी के समय अन्तिम हिन्दू राजा विश्वरूप सेन को पराजित किया। १२५९ ई० में मल्लिक ताजुद्दीन अरसलामखान, जो दिल्ली सल्तनत का बिहार का सूबेदार था उसने लखनौटी पर अधिकार कर लिया। उसके अधीन मुर्शिदाबाद का बागरी क्षेत्र भी था। उस समय पूर्व बंगाल का मध्य क्षेत्र चंदद्वीप के राजा धनुज माधव राय के अधिकार में आ गया था। १२६८ ई० में मागिसुद्दीन तुगलक जो लखनौटी का गवर्नर था उसने स्वयं को स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिल्ली के सुल्तान बलबन के खिलाफ बगावत कर दी लेकिन वह बलबन से पराजित हो गया और बलबन ने बुगराखान को लखनौटी, सतगांव और ढाका का सूबेदार बना दिया। १३४५ ई० में बुगराखां ने पूरे बंगाल को अपने आधीन कर लिया था। उसके पुत्र सिकन्दर शाह ने गौड़ के आदिनाथ ऋषभदेव के मंदिर को नष्ट कर वहाँ मस्जिद बनवा दी जिसे आज भी अदीना मस्जिद कहा जाता है। हाजी इलियास ने अल्लाउद्दीन को मारकर इलियास शाही वंश की स्थापना की। उसके समय दिल्ली सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने बंगाल पर आक्रमण किया लेकिन नाकाम रहा। १४१५ ई० में राजा गणेश ने लखनौटी पर कब्जा कर पुनः हिन्दू राज कायम किया जो २९ वर्ष तक कायम रहा। उसके बाद हुसेनशाही वंश स्थापित हुआ। लगभग १५३८ ई० में शेरशाह सूरि ने गौड़ पर कब्जा किया और उसने बंगाल में प्रशासनिक सुधारों की नींव रखी। ई० १५७४ में अकबर के सेनापति मुनीमखाँ ने दाऊदखान करनानी को हराकर पूरे बंगाल को जीत लिया लेकिन उसकी मृत्यु के बाद पुनः विद्रोह प्रारम्भ हो गये। अतः ई० १५८७ में अकबर ने अपने सिपहसालार सईदखान को बंगाल भेजा। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उसके भाई मकसूदखान के नाम से मुर्शिदाबाद का नाम मकसूदाबाद पड़ा।

In August 1587, Akbar sent Said Khan as his Sipahsalar or governor for the Subah of Bengal. It seems that he was probably able to bring the present Murshidabad, or at least its Bhagirathi riparian part, under his effective administration. For it seems that during his tenure as the Mughal viceroy of Bengal that the foundation of the town of Maqsudabad was laid by his brother Maqsus Khan or Kakhsus Khan.

मुस्लिम इतिहासकार रियाज-उस सालातीन के अनुसार मकसूसाबाद या मकसूदाबाद नाम एक व्यापारी मखसूसखान के नाम से पड़ा जिसने एक सराय का निर्माण कराया था।

According to *Riyaz-us-Salatin,* the place was called Maqsusabad after a merehant named Makhsus Khan who built a *sarai* there. This Makhsus Khan finds mention in *Ain-i-Akbari* of Abul Fazl, as a noble man. It appears from the narrative of *Riyaz-us-Salatin* that, by the end of the sixteenth century, the area occupied by the town of Murshidabad was placed on regular trade route and the number of traders using the route had become quantitatively so significant as to merit the establish ment of a rest house.

अकबर ने सईदखान के बाद आमेर के राजा मानसिंह को बंगाल भेजा। जिसने मुर्शिदाबाद के काँदीविभाग की शेरपुर अटाई की जंग में अफगानों और पठानों को निर्णायक रूप से पराजित कर बंगाल को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

On March 1594, Said Khan was replaced by Raja Man Singh as the Mughal viceroy of Bengal. Saddened by personal

losses and shaken by Bengal climate Man Singh retired to Ajmer in 1598, leaving behind a deputy to govern Bengal Subah from Rajmahal-- the new capital. Taking advantage of the general's absence, Usman, Sajawal, other turbulent Pathan chiefs, Kedar Rai and other zamindars, who had earlier made deceptive submissions, rose in revolt and caused heavy losses to Mughal detachmejts placed at various points. Man Singh hastened back to Bengal and pushed on to face the rebels in East Bengal. In a single battle of Sherpur Atai, within Khargram police-station area of the modern Kandi subdivision, on 12 February 1601, Man Singh inflicted a decisive defeat on the combined army of the rebellious Afghan and Pathan chiefs of the east, south and south west Bengal.

इस प्रकार अकबर ने बंगाल को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया। अकबर बंगाल में दीर्घ समय तक युद्धों में उलझा रहा और अन्त में बंगाल पर फतेह पायी। लेकिन बंगाल का प्रशासन चलाने का उसे अवसर नहीं मिला। उसके बाद जहाँगीर ने सम्राट बनते ही मुगल प्रशासन की बंगाल में शुरुआत हुई। १६०८ ई. में जहांगीर ने असलमखान को बंगाल का सूबेदार बनाया। असलमखान ने छोटे-छोटे राज्यों और रजवाड़ो को अपने आधीन किया। १६१२ ई. में बंगाल की राजधानी राजमहल से ढाका कर दी गयी। जहांगीर के बाद १६२८ ई. में शाहजहां सम्राट बना। अल्लाउद्दीन हुसैन शाह के समय पुर्तगाली व्यापारी सबसे पहले बंगाल में आये थे। अब तक उन्होंने यहां के व्यापार पर एकाधिकार बनाया हुआ था। छोटे-छोटे राजाओं तथा जमींदारों के साथ मिलकर समय-समय पर मुगल सेना को हानि पहुँचाते रहते थे। उन्होंने अकबर से बैण्डल में अपना उपनिवेश बनाने का फरमान भी प्राप्त कर लिया

था। शाहजहां ने बंगाल के गवर्नर कासिमखान को बैण्डल पर कब्जा करने का आदेश दिया और काफी जद्दो-जहद के बाद पुर्तगालियों की पराजय हुई। १७वीं शताब्दी के मध्य तक मुर्शिदाबाद एक बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन चुका था। अन्य वस्तुओं के अलावा रेशम के कारोबार में वृद्धि देखकर नबाव शाहिस्ताखान ने व्यापार पर कर वसूली के लिए प्रशासनिक अधिकारी तैनात कर दिये।

शाहजहाँ की मृत्यु के बाद उसका एक पुत्र शुजा बंगाल का गर्वनर बना उसने राजमहल में स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया। औरंगजेब ने सेनापति मीरजुमला को भेजा जिसने बेलाघाट के युद्ध में शुजा को पराजित किया। मीरजुमला के बाद शाहिस्ताखान बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ। मकसुदाबाद के इतिहास में एक नया मोड़ आया जब १६९८ ई. में शहजादा अजीमुसान जो औरंजेब का पोता था बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया गया और करतलीबखान को उसका दीवान बनाया। दोनों में अनबन के कारण करतलीबखान ने दीवानीसूबा ढ़ाका से मकसूदाबाद में स्थानान्तरित कर दिया। १७०३ ई. में दीवानकरतलीब खान को औरंजेब ने मुर्शीदकुलीखां का खिताब दिया और मकसूदाबाद को मुर्शिदाबाद का नाम बदलने का अधिकार भी दिया। मुर्शीदकुलीखाँ ने बंगाल को १३ चकलों में विभाजित किया जिसमें एक चकला मुर्शिदाबाद प्रमुख राजधानी बनी।

इस प्रकार मकसूदाबाद मुर्शिदाबाद के नाम से परिचित होने लगा। मुर्शीदकुली खाँ जिसका असली नाम जफां खान था जन्म से हिन्दू ब्राह्मण था लेकिन उसका पालन-पोषण एक इरानी व्यापारी खाजी साफिया ने किया और वह मुसलमान बन गया। अपने संरक्षक की मृत्यु के बाद वह भारत आया। औरंगजेब ने उसकी योग्यता देखकर उसे हैदराबाद का दीवान बनाया। १७०१ में बंगाल के दीवान शाहजादा

अजीमुसान के आधीन बंगाल का दीवान बनाया और करतलब खान का खिताब दिया। १७०३ में उसे बंगाल का उपनबाव नाजिम का पद देकर मुर्शीदकुली खान का खिताब दिया। शाहजादा अजीमुसान से अनबन होने के कारण उसने अपना प्रशासन ढाका से मकसुदाबाद में स्थानान्तरित कर दिया और जो उसके नाम से मुर्शिदाबाद नाम में परिवर्तित हो गया। ये बहुत ही योग्य नबाव था। उसकी प्रशासनिक योग्यता के कारण उसे बंगाल का टोडरमल भी कहा जाता है। शेरशाह के बाद बंगाल का वह सबसे योग्य शासक माना गया है। उसने अनेक आर्थिक सुधारों को लागू किया।

भौगोलिक रूप से भागीरथी नदी द्वारा मुर्शिदाबाद दो भागों में बटा हुआ है। भागीरथी का पूर्वी भाग 'बागरी' तथा पश्चिमी भाग 'राढ़' कहलाता है। उत्तर में गंगा की मुख्य धारा इसे मालदा और राजशाही जिलों से अलग करती है। दक्षिण में इसकी सीमा वर्दमान और नदिया जिले से जुड़ी है। पश्चिम में वीरभूम और संथाल परगना है। गंगा की प्रमुख धारा से निकली भागीरथी मुर्शिदाबाद जिले के लगभग बीच में उत्तर से दक्षिण तक बहती है। भागीरथी का पूर्वी क्षेत्र नीचा और उपजाऊ है जबकि पश्चिमी क्षेत्र कुछ ऊंचा है। यहाँ की मिट्टी लाल है। इसके पश्चिम में दो प्रमुख नदिया बंसलोई उत्तर में और दक्षिण में द्वारिका है। पूर्व में जालंगी और भैरव नदी पड़ती है तथा उत्तर में गंगा की मुख्य धारा मुर्शिदाबाद का स्पर्श करती है। नूरपुर में भागीरथी गंगा से अलग होती है जहाँ से २५ मील दूर पर फरक्का बांध अवस्थित है जो मालदा और मुर्शिदाबाद की सीमा को जोड़ता है। जंगीपुर से कुछ पहले वंशलोई और पगलानदी का पानी इसमें गिरता है। शक्तिपुर में द्वारिका की सहायक नदी चोराडेकरा इसमें मिलती है। भागीरथी के पूर्वी छोर में जियागंज से भगवान गोला तक का क्षेत्र ललितकुरी या नलटाकुरी

कहलाता है। १८१३ ई. में कासिम बाजार के पास से अपना स्थान छोड़कर भागीरथी नदी पश्चिम की ओर तीन मील सरक गयी थी।

All this places (Cassimbazar and the Adjacent villages) were originally situated on a curve of the river Bhagirathi, but seventy years ago a straight cut was made forming the Chord of the curve this changing the course of the river. This engineering operation was followed by the breaking out of a epidemic fever, which in virulence and morality, is unparalled by any pestilence save that which destroyed gaur. The old channel survives as a khal which is used by boats in the rains. It is curious that it is called Kati Ganga as if it were an artificial channel and there is tradition that the Sahebs cut a channel and brough the river out to the north of Faras danga.

There also some artificial tanks some of which are large enough to be called Lakes. The largest is the Sagerdighi, Sheikhdighi etc.

१४०० साल पहले मुर्शिदाबाद जिले का कर्ण-सुवर्ण नगर शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध राजा शशांक की राजधानी था। यहाँ अनेक मंदिर व विहार थे जिनमें रक्तमृतिका विहार बहुत प्रसिद्ध है। रक्तमृतिका का अर्थ है लाल मिट्टी। ह्वेनसांग ने अपने भ्रमण वृत्तान्तों में यहाँ इस विहार का वर्णन किया है। लगभग पांचवीं शताब्दी में मलाया द्वीप से एक पाषाण लेख मिला है जिसमें रक्तमृतिका में रहने वाले साहसी, महानाविक बुद्ध गुप्त का वर्णन मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि मुर्शिदाबाद से नाविक लोग दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में व्यापार के लिये आते-जाते थे। बंगाल और विहार की समृद्धि का यह एक प्रमुख कारण था।

We possess an early record of about 5th century A.D. engraved on a stone in Malaya penisula which contains a prayer for the successful voyage of Mahanavik (Great captain) Budh Gupta an inhabitant of Raktamritika. It shows that man belong to this locality near Murshidabad city were great sailors in the early centuries of the christian era and made voyages across the Bay of Bengal to South East Asia.

लार्ड क्लाइब के द्वारा प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की हार से मुर्शिदाबाद का पतन हुआ। उसके बाद जो भी नबाव हुए वे बिना किसी अधिकार व शक्ति के सिर्फ नाम मात्र के नबाव कहलाते थे। आज यद्यपि यह जिला एक श्मशान की तरह बन गया है पर कभी इसकी शान व शौकत देखने योग्य थी। १७५७ में क्लाईब ने इसकी शान और शौकत का वर्णन करते हुए कहा था जिसका वर्णन पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी किताब Discovery of India में किया है। Clive discrive Murshidabad in Bengal in 1757, the very year of Plassey, as a city as extensive populour and rich as the city of London, with this difference that there are individuals, in first possessing infinitely greater property than the last.

इस प्रकार लक्ष्मणसेन की पराजय से प्लासी के युद्ध तक मुर्शिदाबाद के इतिहास में एक के बाद एक अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं हुई।

In or about 1202 A.D. Lakshman Sena was surprised and ran over to Nadiya (Nava dvipa) by Baktiyar Khaliji's son Mohammad Khalji who laid the foundation of a more or less independent administration in the central Bengal. From this time onwards to the time of battle of Plassey the history of

Murshidabad is replete with many incidents and anecdoted more specially during the 17th, 18th centuries that intervened between end of Sena rule in Bengal and establishment of the city of Makhsudabad or Mukhsusabad during the time of Akbar.

D.K. Chakraborty

Superintendent of archeology, West Bengal.

मुर्शिदाबाद का पश्चिमी क्षेत्र उस राढ़ क्षेत्र में आता है जहाँ भगवान महावीर ने विचरण किया था। यहाँ के भग्नावशेष आज भी इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि यह क्षेत्र अतीत में जैन धर्म और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था।

Tradition ascribes that the last of the Jain Tirthankaras Lord Mahavira visited some parts of the country of Radha and it may not be improbable that western portion of the present district of Murshidabad as falling within the ancient divison of Radha ws also sanctified by the visit of the propagator of Jainism.

इस प्रकार जो जैनधर्म बंगाल में अति प्राचीन काल से चला आ रहा था। सातवीं शताब्दी के बाद उसकी जड़े कमजोर पड़ने लगी। शैव व वैष्णव धर्म ने जोर पकड़ा तब यहाँ से हजारों-हजारों जैन धर्मावलम्बियों को पलायन करना पड़ा उसके बावजूद जो यहाँ रह गये थे उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये काफी संघर्ष पूर्ण स्थिति से गुजरना पड़ा। इतिहास इस बात का गवाह है कि बौद्ध धर्म यहाँ से विलीन हो गया लेकिन जैन धर्म किसी न किसी रूप में यहाँ बना रहा क्यों कि उसकी जड़े बहुत ही गहरी थी और जिसकी प्रतिछवि हमें सराक जाति में देखने को मिलती है। १८वीं शताब्दी में पश्चिम उत्तर भारत से जैनियों का पुनः बंगाल की भूमि पर आगमन हुआ और उस समय जो जैनी बाहर से

आये उन्होंने मुर्शिदाबाद जिले को ही अपना निवास स्थान बनाया जिसमें काशिमबाजार, जियागंज, अजीमगंज, लालगोला, बेलडांगा, धुलियान आदि स्थानों में वह लोग बस गये। उन्होंने यहाँ अपना व्यापार शुरू किया। इन स्थानों में अजीमगंज और जियागंज का विशेष महत्व है क्योंकि जैन समाज ने इसी को केन्द्र बनाया और यहाँ अनेक मंदिरों का निर्माण किया । इन मंदिरों में जैन तीर्थंकरों की अनेक प्राचीन मूर्तियां स्थापित की गई और ये स्थल आज जैनियों के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल बन गये। कांदीराजपरिवार के प्राचीन दस्तावेजों से मालूम पड़ता है कि अजीमगंज का प्राचीन नाम 'डिही' जिनेश्वर था जो बाद में मुस्लिम काल में औंरगजेब के पौत्र अजीमुशीन के नाम पर अजीमगंज हो गया।

In ancient times when the Palas ruled over Bengal, these places were known to be the habitats of Digamber Jains and Jain temples were found all over the Rarh area. In the old records of Kandi Raj Family, it was found that Dihi Jainaswer near Dihi Kiritkona was famous for its Jain temple, where an image of Lord Parshanath, made of emereld was worshipped. This Jaineswar temple was famous in the 12th and 13th centuries and in all probablity Dihi Jaineswar had its name altered to Azimganj during the Muslim period.

Kamal Bandhopadhyay

लक्ष्मणसेन के राजत्व के छठे वर्ष में हमें १२वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में शक्तिपुर दानपत्रक से हमें मुर्शिदाबाद के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। जिसके अनुसार पंचथूपी के पास कांदीपुर सबडिवीजन में एक प्राचीन आबादी क्षेत्र था जो वराहकोना कहलाता था। यह सभी जानते है कि वराह के रहने का जगह नीचा

और गंदी जमीन होती है जिससे सुअर गड़हिया कहते हैं जहाँ सारे नगर का गंदा पानी जमा होता है। परन्तु यह जगह जो आज भी वरानगर के नाम से जानी जाती है। ऊँची जगह पर स्थित है। अतः यह क्षेत्र वराह के निवास स्थान के लिये प्रसिद्ध नहीं होकर वराह के स्वामी १३वें तीर्थंकर विमलनाथ के चैत्य के कारण प्रसिद्ध हुआ। जो उनका लंछन है। जिस प्रकार सिंह देखने से हम महावीर स्वामी का स्मरण करते हैं उसी प्रकार वराह देखने व सुनने से विमलनाथ स्वामी का स्मरण होता है। कालक्रम में वराहकोना की जगह किरी कोना बना दिया गया तथा जो बाद में किरीटकोना बन गया। सागरदिघी से कांदी तक के क्षेत्र में अनेकों मंदिर थे जिनमें विमलनाथ स्वामी के प्रसिद्ध चैत्य के कारण यह क्षेत्र वराहकोना के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। आरकियोजिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट डी. के. चक्रवर्ती का कथन मेरी इस बात को और भी पुष्ट करता है।

The Saktipur Grant issued in the 6th regnal year of Lakshmana Sena recording some grant of land and describing the *patakas* in which those were situated is perhaps the last record recovered from Murshidabad district before the coming of the Muslims, wherefrom we get some geographical informations of Murshidabad during the latter part of the 12th century A.D. Thus the *pataka* Varahakona mentioned in this inscription may be identified with Barkona, "a well known ancient locality close to Panchthupi in the Kandi Subdivision."

इस स्थान से प्राप्त तीर्थंकर मूर्ति जियागंज की निहालिया संग्रहालय में रखी हुई है। जिसे जियागंज के जमीदार सुरेन्द्रनारायण सिंह को किरिटेश्वरी का पुनः निर्माण करते समय खुदाई से मिला। जमींदार सुरेन्द्रनारायण सिंह के विषय में यह विख्यात था कि उन्होंने उस क्षेत्र

से मिली अनेकों मूर्तियों को बाहर प्रचार कर दिया। परवर्ती काल में मुर्शीदकुली खाँ का ढाका से यहाँ राजधानी स्थापित करने का प्रमुख कारण इस क्षेत्र की सम्पन्नता एवं व्यापार के लिये आवागमन की सुविधा। विदेशी आक्रमण कारियों ने अपनी बस्तियों को उन्हीं जगहों पर स्थापित किया जो क्षेत्र अतीत में समृद्ध तथा सम्पन्न थे।

कुछ एतिहासकारों का मानना है कि औरंगजेब के पौत्र अजीमुसान के नाम पर डिहीजिनेश्वर का नाम अजीमगंज पड़ा। प्राचीन काल से यह जगह तीर्थस्थान होने के कारण पुनः यह अपने भव्य मंदिरों के कारण तीर्थस्थान के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसका श्रेय १८वीं शताब्दी में राजस्थान से यहाँ आकर बसने वाले जैनों को जाता है। जिन्होंने यहाँ अनेको भव्य मन्दिरों का निर्माण किया। Murshidabad is a famous place of pilgrimage for devout Jains, and every year hundreds of Jains from Rajasthan, Gujrat and other states of India visit Azimganj and Jiaganj as also the famous old temple of the Seths at Mahimapur. These temples are well-known to the Jain community, and some of them had very ancient images of Jain Tirthankars.

Azimganj is the home of the Jains, whose ancestors emigrated to this suburb of the old capital of Bengal in the 18th century.

Jain Temples of Murshidabad

१८वीं शताब्दी में राजस्थान से मुर्शिदाबाद आकर बसने वाले जैनियों के विषय में जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान श्री महेन्द्र सिंघीजी ने लिखा है कि "सन् १७०२ में सर्वप्रथम सेठ मानिकचन्द मुर्शिदाबाद आये और वहीं महिमापुर में बस गये। सन् १७५० में बाबू गोपाकान्त

नौखला अजीमगंज में आकर बसे। सन् १७५५ में बाबू वीरदासजी दूगड़ जियागंज में आकर बसे। सन् १७५७ के आस पास बाबू रतनचन्दजी, महासिंहजी और आसकरन जी कोठारी तीन भ्राता अजीमगंज आकर बसे। सन् १७६६ में बाबू खड़गसिंहजी नाहर अजीमगंज आकर बसे। सन् १७७४ में बाबु हरजीमलजी दुधोड़िया अपने दो पुत्रों सवाईसिंहजी एवं मौजीरामजी को लेकर अजीमगंज आकर बसे। सन् १७८२ में बाबू सवाईसिंहजी सिंघी अपने दो पुत्रों रायसिंहजी (हरिसिंहजी) और हिम्मतसिंहजी को लेकर अजीमगंज आकर बसे।

इसके अलावा १८वीं शताब्दी में कितने घर कब-कब, कहाँ-कहाँ आकर बसे, इसका क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है फिर भी मुर्शिदाबाद में जियागंज, अजीमगंज व उसके आसपास हजारों की संख्या में अपने साधर्मी भाई धीरे धीरे आकर क्रमशः बसते चले गये। जैसे कि **बैद, बोथरा, भूरा, भंसाली, बच्छावत, छाजेड़, चौरड़िया, छजलानी, मोहनोत, डागा, लोढा, नाहटा, नरवत, पटावरी, गोलेछा, बापना, बुच्चा, घोषाल, रेखावत, सुराना, साहेला, सिपानी, सेठिया, श्रीमाल।** वाणिज्य-व्यवसाय तथा अर्थनीति में विशेष दक्षता के कारण उत्तरोत्तर उनकी उन्नति होती गई और आगे चलकर उन्होंने मुर्शिदाबाद के इतिहास को काफी प्रभावित किया।

बंगाल में जैन समाज एवं जैन गौरव के क्षेत्र में मुर्शिदाबाद के इन्हीं जगतसेठ, नौलखा, दूगड़, कोठारी, नाहर, दूधोड़िया एवं सिंघी परिवार के वंशधरों के स्तुत्व कार्यकलाप एवं उनके गौरवमय इतिहास एवं परम्परा को भुलाया नहीं जा सकता है। मुर्शिदाबाद के इन जैन परिवारों का बंगाल में या यो कहिये कि मुगल शासनकाल में समस्त पूर्व भारत और भारतवर्ष में प्रभुत्व था जो अंग्रेजी शासनकाल में भी बरकरार रहा। इन व्यापारी परिवारों ने व्यापार में उन्नति करते करते

अपनी जमींदारी स्थापित की, बैंकिंग का कार्य अपनाया। उनके अतुलित वैभव का सदुपयोग मुक्त हस्त से धर्म कार्यों में होता था, समस्त देश में जैन तीर्थों के उद्धय, रक्षण, निर्माण, पुनरुद्धार आदि कार्यों में होता था तथा स्वधर्मी भाइयों के उत्थान, पुनर्वास, स्वागत, सत्कार आदि अन्य कार्यों में उसका व्यय किया जाता था, जो आज अनुकरणीय योग्य है। इन जैन परिवारों ने न केवल जियागंज-अजीमगंज में ही मन्दिर बनवाएं बल्कि भारतवर्ष के अन्य नगरों और प्राचीन तीर्थ स्थानों में भी जैसे ग्वालपाड़ा, तेजपुर, जंगीपुर, नलहटी, कुचबिहार, प्रतापगंज, सिराजगंज, दिनाजपुर, भागलपुर, लक्खीसराय, गिरीडीह, बराकर, सम्मेतशिखर, लच्छवाड़, कांकदी राजगृह, पावापुरी, गुणाया, चम्पापुरी, बनारस, बटेश्वर, नवराही, आबू, पालीताना, तलाजा, गिरनार, बम्बई तथा किशनगढ़ में मन्दिर और धर्मशाला का निर्माण कराया। जैन धर्म के अप्रकाशित आगम ग्रन्थों का अनुवाद कराया। इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण कार्य किया गया, कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ के शांति निकेतन, बोलपुर में एक जैन-विद्यापीठ की स्थापना की गई थी। इस विद्यापीठ में जैन धर्म के सुप्रसिद्ध विद्वान तथा पुरातत्वज्ञ श्री जिन विजय जी आचार्य का काम करते थे। इस विद्यापीठ में जैन आगम ग्रन्थ, जैन प्रकरण ग्रन्थ, जैन कथा साहित्य, देशी भाषा साहित्य, लिपि विज्ञान, ऐतिहासिक संशोधन पर्हात, स्थापत्व विज्ञान, भाषा विज्ञान, धर्म विज्ञान, प्रकीर्ण जैन वाग्ड्मय इत्यादि जैन संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था। इसी विद्यापीठ के आचार्य श्री जिनविजय जी के तत्वाधान में भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा सिंघी जैन सीरीज के अर्न्तगत ५२ पुस्तकों का इन्हीं विषयों पर प्रकाशन किया जो कि जैन साहित्य की एक अमूल्य निधि है। मुर्शिदाबाद की प्रथम रेल के प्रस्तावक और सह-स्वामी श्री दूगड़ परिवार के थे। यह रेल अजीमगंज और वीरभूमि जिले के नलहाटी स्थान को मिलाती थी।

धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त समय समय पर इन परिवारों के श्रीमंतो ने समाज कल्याण के लिए जगह जगह पर स्कूल, कालेज, प्रस्तकालय, अस्पताल के निर्माण में भी मुक्त हस्तदान देकर अपनी उदारता का प्रदर्शन किया है। सामाजिक और सरकारी संस्थाओं में भी उनका उल्लेखनीय अनुदान रहा है। अकाल व बाढ़ के समय अपने अपने जमींदारी में कर माफकर महीनों तक मुफ्त अनाज बितरण करवाया। इन्हीं सब सेवाओं के कारण अंग्रेज सरकार को भी उन्हें सम्मानित करना पड़ा। बींसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतवर्ष में कहीं भी कोई ऐसा एक अकेला स्थान नहीं जहाँ एक ही अंचल में इतने अधिक रायबहादुर की पदवी पानेवाले लोग रहें हो जितने अकेले जियागंज-अजीमगंज में थे। इसके अलावा राजा और कैसरे-हिन्द का सम्मान भी इसी अंचल के श्रीमंतो को मिला था। मुगल शासनकाल में तथा बाद में अंग्रेज-सरकार से भी अकेले इसी प्रान्त के "गैलड़ा" परिवार के श्रीमंतो को 'सेठ' 'जगतसेठ' व 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त हुई थी।

जगतसेठ

सेठ	-	मानिकचन्द गैलड़ा	-	बादशाह फर्रूखशियर	-	सन् १७०५
जगतसेठ	-	फतहचन्द गैलड़ा	-	बादशाह मुहम्मदशाह	-	सन् १७२३
जगतसेठ	-	महताबचन्द गैलड़ा	-	बादशाह अहमदशाह	-	सन् १७५६
जगतसेठ	-	खुशालचन्द गैलड़ा	-	बादशाह शाह आलम	-	सन् १७६२
जगतसेठ	-	हरखचन्द गैलड़ा	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १७८२
जगतसेठ	-	इन्द्रचन्द गैलड़ा	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८१५
जगतसेठ	-	गोविन्दचन्द गैलड़ा	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८२२

रायबहादुर

धनपतसिंहजी दूगड़	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८६५
लक्ष्मीपतसिंहजी दुगड़	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८६७
सिताबचन्दजी नाहर	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८७५

बुधसिंहजी नाहर	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८८८
विशनचन्दजी दुधोड़िया	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८८८
गणपतसिंहजी दुगड़	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८९८
मणिलालजी नाहर	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८९४
धनपतसिंहजी नौलखा	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १९१०

रायसाहब

मेघराजजी कोठारी	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १९२४

राजा

विजयसिंहजी दुधोड़िया	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १९०८

सी. आई. ए. - कैसर हिन्द

नरपतसिंहजी दुगड़	-	अंग्रेज सरकार	-	सन् १८९८

इन्हीं परिवारों के कई सम्मानित व्यक्तियों ने अखिल भारतवर्षीय जैन श्वेताम्बर कानफ्रेन्स के अधिवेशनों में सभापति पद को शोभायमान कर समाज को गौरव प्रदान किया है। कई महानुभाव बंगाल विधान परिषद के मेम्बर, बंगाल विधानसभा के भी मेम्बर व मंत्री पद प्राप्त कर चुके है। ये लोग देश सेवा में भी पीछे नहीं रहे। आजाद हिन्द फौंज के संस्थापक नेताजी सुभाषचन्द बोस को मुर्शिदाबाद पधारने पर भी काफी नगदी भेंट की गयी थी। जयपुर महाराजा सवाई रामसिंहजी ने भी कलकत्ता भ्रमण के समय अजीमगंज का आतिथ्य स्वीकार किया था। अंग्रेज सरकार के गर्वनर व उच्च पदाधिकारियों का तो प्रायः आना जाना लगा रहता था।

इन्हीं जैन परिवारों द्वारा निर्मित जियागंज-अजीमगंज में अनेकों मन्दिरों का निर्माण किया गया है, प्रत्येक वर्ष राजस्थान, गुजरात और भारत के अन्य राज्यों के हजारों जैन तीर्थयात्री पूर्व के जैन पंचतीर्थों की यात्रा के समय जियागंज-अजीमगंज के मन्दिरों के दर्शन हेतु आते हैं। ये मन्दिर जैन सम्प्रदाय में काफी ख्याति प्राप्त है और इनमें से कई

मन्दिरों में तीर्थंकरों की अति प्राचीन एवं दर्शनीय मूर्त्तियाँ स्थापित हैं।

श्री महेन्द्र सिंघी, मुर्शिदाबाद के जैन समाज की गौरवगाथा

कासिमबाजार की प्राचीन नेमिनाथ मंदिर नष्ट होने के बाद उसकी मूर्तियों को अजीमगंज, लालगोला और राजशाही के मंदिरों में प्रतिष्ठित किया गया। अजीमगंज का सबसे प्रमुख मंदिर २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ जी का है। सम्भवनाथ मंदिर में तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ की ८ फुट ऊंची पाषाण की मूर्ति दर्शनीय है। पारसनाथ मंदिर की प्राचीन पाषाण मूर्ति कासिमबाजार के मंदिर से लायी गयी है। शान्तिनाथ भगवान के मंदिर में अनेक कीमती धातु की प्राचीन मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों के विषय में Jain temple of Murshidabad में लिखा है—

Some of the metal images in the Jain temples of Azimganj bear inscriptions on their backsides. Deciphering these inscriptions is not easy. But some images made of eight metals, show very ancient dates. One image in Chintamaniji temple bears a date of 1019 Samvat, and some other bear the dates showing the craftsmanship two to three centuries old. In Shantinath temple, an idol bears a date of 1553 Samvat and the old image of Neminath has the year 1507 Samvat inscribed on the back. But the old stone image of Sambhabnath near Baranagar is more than five feet in height and is perhaps the largest Jain image in any temple of the three eastern states of India. The Jain temples of Murshidabad are still attrative to all sections of people.

Jain Temples of Murshidabad

मुर्शिदाबाद के जैन मंदिर :

वर्तमान में अजीमगंज में सात मन्दिर हैं (१) श्री नेमीनाथजी का

मन्दिर (२) श्री शांतिनाथजी का मन्दिर (३) श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथजी का मन्दिर (४) श्री सुमतिनाथजी का मन्दिर (५) श्री पद्मप्रभुजी का मन्दिर (६) श्री सम्भवनाथजी का मन्दिर (७) श्री रामबाग सावलियाजी का मन्दिर - दादाबाड़ी।

जियागंज में (१) श्री आदिनाथजी का मन्दिर (२) श्री विमलनाथजी का मन्दिर (३) श्री सम्भवनाथजी का मन्दिर (४) श्री सांवलियाजी का मन्दिर (५) कीरत बाग स्थित श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर व दादाबाड़ी। इसके अलावा कठगोला में छत्रबाग तथा श्री आदिनाथजी का मन्दिर और महिमापुर में जगतसेठ का प्रसिद्ध कसौटी मन्दिर था जो वर्तमान में विश्वमैत्री धाम गांधीनगर में स्थान्तरित कर दिया गया है।

श्रीनेमिनाथजीका मन्दिर :-

अजीमगंज में स्थित नेमिनाथजी का मंदिर संवत १९४३ ई. में श्रीसंघ द्वारा निर्मित हुआ। इस मंदिर के मूल नायक २२वें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथजी है। यह मंदिर २,९३३.२६१६ मी० में भूमि में बना हुआ है। इस मंदिर में २८ पाषाण की मूर्ति "१९ अष्टधातु की मूर्ति" और दो नीलम और एक स्फटिक की मूर्ति है। मंदिर की देखभाल के लिये श्री श्री नेमिनाथजी महाराज का भंडार नामक ट्रस्ट बना हुआ है। इस मन्दिर में प्राचीन ज्ञान भंडार भी है। इस मंदिर की मूर्तियों के शिलालेख निम्नलिखित है। वर्तमान में इस मंदिर के प्रमुख ट्रस्टी श्री सुनील कुमार चौरड़िया है।

पञ्चतीर्थियों पर :

संवत् १५१७ वर्षे सुदि ५ दिने सोमवारे उकेश वंशे लोढा गोत्रे सा० वीशल भार्या (यह चौविशी यहां पर दिल्ली से आई है।)

भावलदे तत्पुत्र सा० कर्म्मा तद्भार्यां कन्यतिगते तत्पुत्र सा० सहसमल्ल श्रावकेण सपरिवारेण आत्मश्रेयोर्थं श्रीचन्द्रप्रभ विंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनराजसूरि पट्टे श्रीजिनभद्रसूरिभिः।।

संवत् १५१८ वर्षे माघ सुदि ४ सोमे श्रीब्रह्माणगगोत्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रेष्ठि विरूआ भार्या मुक्ति सुत हीरा भार्या हीरादे सुत भावड़ कमुआभ्यां स्वपित्रोः श्रेयोर्थ श्रीधर्म्मनाथ बिंबं पञ्चतीर्थी कारापितः प्रतिष्ठितं श्रीबुद्धिसागरसूरि पट्टे श्री विमल सूरिभिः।। सीतापुर वास्तव्यः।।

संवत् १५१९ वर्षे वैशाख वदि ११ शुक्रे उ० ज्ञातीय विद्याधर गोत्रे। सा० सूंमण। भा० सूमलदे। पु० वेला भा० बगू नाम्ना पु० सोमा युतयां स्वभ्रातृ पुण्यार्थ श्रीआदिनाथ बिंबं का० प्र० वृहगच्छे धोकमीयावटंके (?) श्री धर्म्मचन्द्रसूरि पट्टे श्रीमलयचन्द्र सूरिभिः।

।।ए०।। संवत् १५२२ वर्षे आषाड़ सुदि ८ उकेशिज्ञातीय मवेयता गोत्रे। सा० केसराज भार्या... रतनाकेन श्रेयसे श्रीसुमति बिंबं प्रतिष्ठितं धर्म्मघोषगच्छे श्रीसाधु .....।।

संवत् १७०६ व। ज्ये। गु० श्री राजनगरवास्तव्य। प्राग्वाटज्ञातीय वृहद्शाषायां सा० ऋषभदास भा० उक्षु नाम्न्या श्री पार्श्वनाथ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं च तपागच्छे ।भ०। श्री ५ श्रीविजयानन्दसूरिभिः।। आचार्य श्री ५ श्रीविजयराजसूरि परिकरितैः।। श्रीरस्तु। भ।।१।।

पाषाण की मूर्ति पर :

संवत् १५४९ वर्षे वैशाख सुदि ३ श्रीमूलसंघे भट्टारक श्रीजिनचन्द्रदेवा सा०...राज पापड़ीवाल सप्रणमति का० श्रीभीमसिंघ रावल। सहर मएझसा।

।।श्री नेमिनाथजी का पंचायति मन्दिर।।

लेख– संवत १५११ व० माघ सु० ५ सोमे ओसवाल ज्ञाती लिगा गोत्रे समदडीया उडकेण० सुहडा भा० सुहागदे पु० कम्माकेन भा० कस्मीरदे पु० हेमा संसारचंद देवराज युतेन स्वश्रेयसे श्री नेमिनाथ बिंबं कारितं श्री उपकेश गच्छे श्री कुकुदाचार्य संताने प्र० श्री कक्क सूरिभिः।

संवत् १५२३ वर्षे बैशाख बदि ४ गुरौ ओसवाल ज्ञातौ कटारींया गोत्रे सा० सरवण भा० राणी सुत सा० सिंघा भा० सोमसिरि सु० सा० आदु नाम्ना भार्या विरणि सुत सा० पुनपाल सा० सोनपाल सुरपति प्रमुख कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं च। श्री लक्ष्मीसागर सुरिभिः ।। श्री।।

संवत् १५५३ वर्षे बैशाख सुदि प्राग्वाट ज्ञा० व्यव० षेता भार्या मदी सुत व्य० भोजाकेन भा० राजू भ्रातृ राजा रत्ना देवा सहितेन स्वपुर्विज श्रेयोर्थ श्री शांतिनाथ बिंबं का० प्र० तपागच्छे श्रीहेमविमल सूरि श्री कमल कलस सुरिभिः सिरुआ वास्तव्य।

संवत १६१५ वर्षे बैशाख वदि १० भौमे जवाठ वास्तव्य हुवड ज्ञातीय मंत्रीश्वर गोत्रे दो० स० क्षेमाकेन भा० राणी स० श्री पार्श्वनाथ र्विबं का० प्र० श्री तेजरत्न सूरिभिः।।

।।श्री चिंतामणि पार्श्वनाथजी का मंदिर।।

यद्यपि इस मंदिर का निर्माण १८८८ में हुआ था लेकिन इसकी मूर्तियाँ ४०० से ५०० वर्ष पुरानी है। इस मंदिर का निर्माण मनहोत परिवार द्वारा कराया गया था। यह मंदिर १९२९. १०२५. वर्ग मीटर पर बना हुआ है इसके मूल नायक २३वें तीर्थंकर भगवान श्री पार्श्वनाथ जी है। इस मंदिर में २४ पाषाण मूर्तियाँ एवं ४२ अष्टधातु की मूर्तियाँ हैं। इस मंदिर की देखभाल सिंघी जैन रिलीजियस ट्रस्ट्र, अजीमगंज द्वारा की जाती है।

लेख– संवत १५०५ वर्षे माघ बदि २ रबौ औशवाल ज्ञातीय भणकारी गोत्रे सा० गेल्हा पु० सो पी भा० पोलश्री पु० हराकेन आत्म पुण्यार्थ श्री अभिनंदन विंबं कारापितं प्रतिष्ठितं श्री धर्मघोष गच्छे भ० श्री विजयचंद्र सूरि पट्टे श्री साधुरत्न सुरिभिः।

संवत १५२७ बर्षे बै० व० ११ बुधे लांवड़ी वास्तव्य उकेश ज्ञातीय व्य० षीमसी भा० वानु पुत्र व्य० गणमा भा० बाबू व्य० केल्हाकेन भा० मानू बृद्ध भा० घूघा पुत्र मेघादि कुटुंब युतेन श्री मुनिसुब्रत स्वामी चतुर्विशति षट्ट कारितः प्रतिष्ठितः।। वम्रगत चांइ सगीया श्री मर्त सूरि श्री उकेश विंवदणीक गच्छे प्रतिष्ठा कारिता।। (अक्षर अस्पष्ट है)

संबत १५२७ वर्षे माघ बदि ५ शुक्रे मत्रि दली० वंश दुल्लह गोत्रे ठ० पाल्हणमीकेन पु० कर्णसी ठ० उभयचंद उ० हेमा पुत्री अजाइव सहितेन परिवार युतेन श्री शीतल नाथ विंबं कारितं श्री खरतर गच्छे श्री जिनसागर सूरि पट्टे श्री जिनसुंदर सुरयस्तत्पट्टे श्री जिनहर्ष सूरिभिः प्रतिष्ठितं।

संवत १५६३ वर्षे माह सुदि ५ गुरौ श्रेष्ठि गोत्रे सा० बबा भा० बालहदे सु० शदा भा० पल्ह सु० विरा ठिरा आंवा सह लषा युतेन श्री पद्मप्रभु बिंबं कारितं उपकेश गच्छे ककुदाचार्य संताने भ० श्री देवगुप्त सूरिभिः प्रतिष्ठितं।।

संबत १६३० बर्षे माघ सुदि १३ दिने पत्तन् वास्तव्य सा० सांडा भार्या लषमाइ सुत बीर पालेन भार्या रंगाई प्रमुख कुटुंब युतेन श्री संभवनाथ विंबं कारितं प्रतिष्ठितं तपा गच्छाधिराज श्री हीरविजय सुरिभिश्विरं नंदतात्।

रौप्य की मूर्ति पर :

संबत १९३३ का जैष्ठ शुल्के १३ शनिबासरे श्री शांतिजिन पंचतिर्थीका उस बंशे दुधेड़िया गोत्रे बाबु हर्षचंद तत्पुत्र बाबु बिसनचंद्रेन कारितं पुनमिया विजय गच्छे श्री शांति सागर सूरिभिः प्रतिष्ठितं।

।।श्री सुमतिनाथजी का मंदिर।।

धातुयों की मूर्ति पर :

उँ।। श्री सरवाल गच्छे असामूकेन कारित।। संतु १११०

नाहरों के पूर्वजों के प्रतिष्ठित जिनालयों में यह एक मन्दिर ग्राम के मध्य भाग में विद्यमान है। स्वर्गीय श्रीमति मयाकुमर के पुत्र स्वर्गीय बाबु गुलालचन्दजी तत्पुत्र संग्रह कर्त्ता के परम पूज्य पिता राय सिताबचन्द नाहर बहादुर हैं। पूर्व मन्दिर गंगास्रोत से नष्ट हो जाने से आपने यह नवीन चैत्य संवत् १९५४ (१८९७) में निर्माण करवाया है। मन्दिर के मूल नायक श्री सुमतिनाथ भगवान हैं। यहाँ पर ७ पाषाण की २४ रत्नों की प्रतिमा थी। वर्तमान में इसके प्रबन्ध अधिकारी श्री निर्मल सिंह नाहर है।

प्रथम मन्दिर का लेख– ।। श्री।। सं १९१३ मिति वैशाख सुदि ५ शुक्रवासरे श्री जिन भक्ति सूरि साखायां उ० श्री आनन्द वल्लभ गणि। तत् शिष्य पं। प्र। सदालाभ मुनि उपदेशात् श्री अजिमगंज वास्तव्य नाहर श्री खड्गसिंहजी तत्पुत्र श्री उत्तमचन्दजी तत्भार्या श्री मयाकुमार एषः श्री सुमति जिन प्रासाद कारितः प्रतिष्ठाप्य श्री संघाय समर्प्पितश्र बिधिना सत्तां।। जं। यु। प्र। श्री जिन सौभाग्य सूरिजी विजय राज्ये।। श्री रस्तुः।। कल्याणमस्तुः।। श्रीः।। श्रीः।।१।।

(यह लेख श्री पार्श्वनाथजी की मूर्ति के पीछे खुदा हुआ है, अक्षर अत्यन्त प्राचीन है। मुसलमानों के चित्तौड़ पर दखल करने से पूर्व यह मूर्ति वहाँ पर थी।)

सं० १४६९ बर्षे माघ सुदि ६ रबौ श्री आंचल गच्छे प्रग्वाट ज्ञातीय व्य० उदा भार्याचत्त तत्पुत्र जोला भार्या डमणादे तत्पुत्रेण व्य० मूंडनेन श्री गच्छेश श्री मेरुतुंग सूरिणामुपदेशेन भ्राता श्रेयोर्थ श्री पार्श्वनाथ विंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री सूरिभिः।

संवत १४७९ बर्षे पोष वदि ५ शुक्रे ग्रेहमी बास्तव्य श्रीमाल ज्ञाती श्रे० प्रतापसींह भा० सोहगदे सुत डूदाकेन पितु मातु श्रेयोर्थ श्री वासुपूज्य विंबं कारितं पूर्णिमा गच्छे प्रतिष्ठितं श्री सूरि जिनबल्लभसूरि।

सं० १५१० व० फा० शु० १२ उकेश वंशे जाणेचा गोत्रे सा० पदम पुत्र रउला सु० साजण भा० जइसिरि पु० षेढा भा० कणसिरि सेता भा० लषमसिरि पुत्र ३ कालु खेमधर देवराज भा० चांडु सा० हापाकेन भा० ३ गूजरि सु० पुंजा राजीदि कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्रीश्रेयांस चतुर्विशति पट्टः कारितः तपा श्रीरत्नशेखरसूरि श्रीउदयनंदिसूरिभिः प्रतिष्ठितः।

सं १५१७ बर्षे माह सु० ५ शुक्रे श्री उपकेश ज्ञाती नाहर गोत्रे सा० लेला पु० लाघा भा० सोहिगि पु० चांपा सालू लादा सहितैः पितु श्रेयसे श्री श्रेयांस नाथ बिंबं का० प्रति० श्री धर्मघोष ग० श्री विजयचंद्र सूरि पट्टे भ० श्री साधू रत्नसूरिभिः।

संबत् १५३६ वर्षे मार्गशिर सु० ६ शुक्रे श्री श्रीमाल ज्ञाण व्यव० आका भार्या रातलदे सुत लांवाकेन भा० भानू नापा निमि। श्री शांतिनाथ बिंबं कारा० प्र० पिप्फ० श्री मुनि सिंधु सुरि पदे श्री अमरचंद्र सूरिभिः।। नापलिया ग्रामे।

संबत् १६४१ बर्षे मागसर मासे। सी० श्री राजा भा० रजमलदे पु० दोसा ठाकुर धना हाथी लीबा हाथा भा० हरषमदे पु० जीवा एतत् स्वकुटुंब युतैः श्री पार्श्वनाथ विंबं कारापितं श्री संडेर गच्छे वा० श्रीसहिज सुंदर पदे उ० क्षेमासुंदर पट्टे उ० श्रीनय सुंदर प्रतिष्ठितं।

।।श्री पद्मप्रभुजी का मंदिर।।

यह मंदिर १८८० ई० में निर्मित हुआ था लेकिन इसकी मूर्तियाँ भी ४०० से ५०० वर्ष पुरानी है। इस मंदिर का निर्माण खरतरगच्छ यति श्री विजयचन्दजी ने करवाया था। यह मंदिर ७६४.०१७३ वर्ग भूमि पर स्थित है इसके मूलनायक भगवान श्री पद्मप्रभुजी है। इस मंदिर में ७ पाषाण मूर्तियाँ तथा १० अष्टधातु, २ नीलम और १ स्फटिक की मूर्तियाँ हैं। इसकी देखभाल 'श्री श्री पद्म प्रभु मन्दिर ट्रस्ट्र' द्वारा की जाती है।

लेख–

संबत १४९७ बर्षे मार्गशीर्ष वदि ३ बुधे उकेश बंशे लुणीया गोत्रे साः षीमा पुत्र साः सधारण श्रावकेण पुत्र सीहा सहितेन श्री पार्श्वनाथ विंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री जिनभद्र सूरिभिः खरतर गच्छे।

संबत १५१९ बर्षे बैशाख शु० ३ श्रीमाल ज्ञातीय सा० लाईयाकेन भार्यागांगी पुत्र हासादि कुटुंब युतेन पुत्री रमाई श्रेयोर्थ श्री शांतिनाथ विंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीतपा गच्छे श्री रत्नशेखर सूरि पट्टे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः। धंधूका बास्तव्य।।

संवत १५५८ बर्षे माघ सुदि १२ गुरौ ओकेश ज्ञातीय भारडा सुत मेहा भार्या पदमाई श्रेयसे भणसाली पताकेन श्रीवासुपूज्य विंबं कारितं प्रतिष्ठितं खरतर गच्छे श्रीजिनहंस सूरिभिः।

संबत १५६४ बर्षे शा० १४१४ वर्त्तमाने मालवक देस।। उपकेस ज्ञातौ सा० देवसी भा० देमा पु० सा० सागा भा० रुपणं पुत्र जसपाल भा० लषमी पुत्र रला विंबं प्रतिष्ठितं। तपा श्री हेमवल (विमल) सूरिभिः।।

संबत १९०० मिति आषाढ़ सित ९ गुरौ श्री आदिनाथ विंबं प्रतिष्ठितं। बृहत खरतर भट्टारक गच्छेश भ०। श्री जिन हर्ष पट्टे दिनकर भ० श्री जिन सौभाग्य सूरिभिः कारितं च श्रीमाल बंशे टाक गोत्रे मोहया दास पुत्र हनुतसिंहस्य भार्या फुलकुमार्या स्वश्रेयोर्थ।

।।श्री सम्भवनाथजी का मन्दिर।।

अजीमगंज में स्थित इस मंदिर का निर्माण सन् १८८६ में हुआ। यह मंदिर कुल ३६६५.६७३१ वर्ग मी० भूमि पर निर्मित है। शहर से कुछ दूर इस मंदिर का निर्माण राय बहादुर धनपत सिंहजी दूगड़ द्वारा कराया गया था। मूल नायक श्री सम्भवनाथजी स्वामी है। इस मंदिर में ८६ पाषाण मूर्तियाँ, १६४ अष्टधातु की मूर्तियाँ, ४ स्फटिक १ पन्ने की

और १२ करणीरत्न की है। पूर्व भारत में स्थित मंदिरों में सबसे ज्यादा मूर्तियाँ इसी मंदिर में विराजमान है। इन मूर्तियों को यहाँ प्रतिष्ठित करने के लिए नलहटी से अजीमगंज में लाने के लिये विशेष रेल लाइन बैठायी गयी थी। इस मंदिर की देखभाल 'श्री सम्भवनाथजी मंदिर ट्रस्ट', श्री अनिल कुमार सिंह दूगड़ द्वारा की जाती है। वर्तमान में इस मंदिर की अनेक मूर्तियाँ पालीताना भेज दी गयी हैं।

पाषाण के विशाल मूल बिंब पर :

।। श्री वीर गताब्दा २४०३ बिक्रमादित्य सम्बत १९३३ शालिवाहन १७१८ मात्र शुक्ल एकादश्यां गुरुवासरे रोहिणी नक्षत्रे मींन लग्ने बंग देशे मक्षुदावादांनर्गताजिमगञ्ज वासी बृहत ओस बंशे लुंपक गच्छे बुधसिंह पुत्र प्रतापसिंह तद्भार्या महताब कुमर्य तत् बृहत पुत्र राय लक्ष्मीपतिसिंह बहादुर तत् लघु भ्राता राय धनपतसिंह बहादुर स्वयं एवं गनपतसिंह, नरपतसिंह सपरिवारेन श्री सम्भवजिन बिंब शांतिनाथजी नेमनाथजी पार्श्वनाथजी महावीरजी परिकर सहित कारापितं भिक्टुरिया सम्राट बिद्यामाने प्रतिष्ठित सर्व सूरिभिः।।

संबत् १५११ बर्षे ज्ये० सु० ३ गुरौ दिने उ० ज्ञातीय श्री वरलद्ध गोत्रे नाथु संताने राजा भार्या राजलदे सुत सह सावलू राणा हुदा श्री मल्लयुतौ पितृ मातृ श्रेयसे श्री चंद्र प्रभ स्वामी विंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री वृहदगच्छे श्री मुनिशेखर सूरि संताने श्री महेन्द्र सूरि पट्टे श्री श्री श्री रत्नाकर सूरिभिः शुभं।।

संबत १५४६ बर्षे माघ सु० १० रवौ श्री श्रीमाल ज्ञा० सं० भुभच भार्या सं० भरमादे सुत सं० समरसी भार्या धनाई सु० रा० अर्जन केन भार्या अहिवदे पु० सं० राणा शाणा प्र० कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्री वासुपूज्य विंबं कारि० प्रति० श्री बृहत्तपा श्री ज्ञानसागर सूरि पट्टे श्री उदय सागर सूरिभिः। वुगुज ग्राम।।

संबत १५६३ बर्षे माह बदि ११ दिने रवौ श्री श्रीमाल ज्ञातीय लघु शाषायां। व्य० केसव भा० भरमी सुत व्य० वीका भा० संपू। भ्रा० व्य० आसाकेन भार्या अमरादे भातृ व्य० लाडण प्रमुख कुटुंब युतेन श्री वासुपूज्य चतुर्बिशति पट्ट कारितः प्र० श्री सूरिभिः श्री स्तम्भ तीर्थे। कुतवपुर वास्तव्यः।। शुभं भवतु।

संबत १५८७ बर्षे बैशाख सुदि ७ सोमे ओस्वाल ज्ञातीय सुराणा गोत्रे साह शिवदास जिनदासकेन गृहे भार्या नाई नारिग सुत भातृ राजपाल सहितेन मातृ नारिग श्रेयोर्थ श्री कुंथुनाथ विंबं श्री चतुर्बिशति जिन सहित कारापित प्रतिष्ठितं श्री धर्मघोष गच्छे नंदिवर्द्धन सुरि पदे नयचंद सुरिभिः।।

संबत १७०० बर्ष फागुण सु० १२- - - - - - गच्छे भट्टारक शुभकीर्त्ति उपदेसात् अत्ताल ज्ञाती गोपल गोत्रे सं। दोर राज भार्या सेदल पुत्र सं० चेरह राज भार्या जीरी पुत्र लालूमणी नित्यं प्रणमंति।।

।।श्री शांतिनाथजी का मंदिर।।

यह मंदिर सुमेरचन्द जी बैद की धर्मपत्नी श्रीमती गुलाब कुमारी बीबी द्वारा १८७३ ई० में अजीमगंज में निर्माण कराया गया था। इस मंदिर की एक मूर्ति संवत् १५१० की है। यह मंदिर १६०७.६४२६ वर्ग मी० में स्थित है। इस मंदिर में ३ पाषाण मूर्ति, २ अष्टधातु की एवं १ स्फटिक की मूर्ति है। वर्तमान में मंदिर का प्रबन्धन सिंघी जैन रिलिजियस ट्रस्ट, अजीमगंज द्वारा किया जाता है।

लेख– संबत १५१० बर्षे पौ० सु० १५ शुक्रे उपकेश ज्ञातीय फ० शिवा भा० प्रीमलदे सुत फ० रामाकेन भा० आसु प्रमुख कुंटुब युतेन निज श्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिंबं का० प्र० श्री तपा गच्छ नायक श्री श्री श्री रत्नशेखर सुरिभिः।।

।। राय बुधसिंहजी दुधेड़िया का घरदेरासर।।

संबत १५३६ बर्षे फागुण सुदि ५ दिने श्री उकेश बंशे सेठि गोत्रे श्रे० सीधरेण भा० घिरी सुलूणी पु० थावरसिंह। जटादि युतेनं स्वश्रेयोर्थ श्री पार्श्वनाथ विंबं का० प्र० श्री खरतर गच्छे श्री जिनभद्र सुरि पदे श्री जिनचंद्र सुरिभिः।

।।श्री सांवलियाजी का मंदिर – रामबाग।।

कासिम बाजार दादाबाड़ी का प्राचीन मंदिर तथा जियागंज और जंगीपुर के मंदिरों की मूर्तियों से सुसज्जित यह मंदिर १८७० ई० में श्रीसंघ द्वारा निर्मित किया गया। ४५३५०.१८३६ वर्ग मी० पर बना यह मंदिर 'दादाजी महाराज का पंचायती मंदिर, ट्रस्ट' द्वारा देखरेख किया जाता है। यहाँ पर ३३ पाषाण मूर्तियाँ और १८ अष्टधातु की मूर्तियाँ हैं। यहाँ कासिमबाजार से आये नेमिनाथ तथा जियागंज व जंगीपुर से सहसफणा पार्श्वनाथ मन्दिर है। सांवलिया पार्श्वनाथ व अष्टापद जी का मन्दिर भी इसी में है। यहाँ श्री जिनदत्त सूरिजी व श्री कुशल सूरिजी के चरण पादुकाएँ है।

लेख– संबत १५४६ माघ बदि ४ सुचिंतित गोत्रे सा० सोनपाल सु० सा० दासू भा० लाडो नाम्न्या पु० सिवराज भार्या सिंगारदे पु० चूहड़धन्ना आसकरणादि सहितया स्वपुण्यार्थ श्री अजितनाथ विंबं का० प्र० उपकेश गच्छे कुकुदाचार्य सं० श्री देवगुप्त सुरिभिः।।

जिला – मुर्शिदाबाद। स्थान – बालूचर।

।। श्री आदिनाथजी का मंदिर।।

१७८७ ई० में केशरी सिंह जी छजलानी द्वारा निर्मित यह मंदिर जियागंज में स्थित है। जियागंज को बालूचर भी कहा जाता है।। यह मंदिर ६१५.२६०५ वर्ग भूमि पर निर्मित है। इसके मूल नायक श्री आदिनाथ ऋषभदेव है। यहाँ अष्टधातु की ११ तथा पाषाण की ९ मूर्तियाँ

हैं। इस मंदिर की देखरेख श्री श्रीआदिनाथ महाराज के मंदिर ट्रस्ट्र के द्वारा की जाती है। पास ही में तपागच्छ का उपाश्रय है।

पाषाण मूर्तियों पर :

।। श्री जिनाय नमः।। श्री मत्विक्रमादित्य राज्यात् संबत १८४५ मिते। श्री शालिवाहन शकाब्दाच्छके १७१० प्रवत्तमाने। मासोत्तम माघ मासे शुक्ले पक्षे ३ तृतीयायां तियौ गुरुवासरे श्री तपगच्छाधिराज भट्टारक श्री विजय जैनेंद्र सूरीश्वर विजय राज्ये। महिमापुर वास्तव्य छजलानी गोत्रे। साहजी श्री जीवणदासजी तत्पुत्र धर्म्मभार धुरंधर साहजी श्री केशरी सिंहजी तस्यभार्या धर्म कर्मणि रता बीबी सरुपोजी पं। श्री भावविजय गणिरुपदेशात्। स्वगृह जिन विंबं स्थापनार्थ।। बालोचर नगरे श्री जिन प्रासाद कारितं। प्रतिष्ठितं पं० भाव बिजय पं० गंभीर बिजय गणिभिः। यावत्वरासुमेरोद्रि। यावत्रैलोक्य भास्वरं। तावत्तिष्टतु प्रासादं निर्बिघ्नन्तु सुनिश्चलं।।१।। लिपिकृतं पं० भूपबिजयेन।

श्री जिन शासनो जयति।। श्री मत्तपागण शुभांबर धर्मरश्मिः। श्री सूरि हीर बिजयोर्जित ज्ञान लक्ष्मी।। यस्योपदेश वचनाय्यवनेश मुख्यो। हिंसानिराकृत परो प्रगुणो वभुव १।। तत्पट्टे क्रमतोरवीव विजय जैनेंद्र सूरीश्वर। स्तद्राज्ये प्रगुणो जिनालय वरो वालोचरे द्रंगके।। श्री संघेश सहायता शुभरुचिः श्री केशरी सिंहक। स्तत्पत्न्या जिन राज भक्ति बशतः कारापितोयं मुदा।।५।। श्री वीर हीर सूरीश संघाटक गुणाकरः। वाचकोत्तम भुमान्यः श्री शुद्धि बिजयोभवत्।।३।। तच्छिव्य भाव बिजयोपदेश बाक्येन कारितं रम्यं प्रतिष्ठितं च सदनं जिन देव निवेशनं। शुभतः।।४।। भद्रं भवतु संघस्य भद्रं प्रासाद कारके तथा भद्रं तपा गच्छे भवतु धर्मिणां।।

धातु की मूर्तियों पर :

संबत १४९० बैशाख सुदि ५ जार उडिया गोत्रे। सा० भोंदा सुत।

सा० पदाकेन पु० फासु रजनादि सहितेन स्वभार्या पदम श्री पुण्यार्थ श्री बिमलनाथ बिंबं श्रीहेमहंस सूरिभिः।

संबत १५१३ बै० सुदि ५ गुरौ श्री हुंवड ज्ञातीय फडी० शिवराज सुत महीया श्रेयसे भ्रातृ हीराकेन भ्रातृज कुमुया सुतेन श्री शांतिनाथ विंबं कारितं प्रति० बृद्ध तपा पक्षे श्री रत्नसिंह सूरिभिः।।

संबत १५२८ बर्षे माघ बदि ५ गुरौ उपकेश ज्ञातीय श्रे० तेजा भा० तेजलदे पुत्र जूठा भा० पतसमादे पुत्र देवदास गणपति पोपट जैसिंग पोचा युतेन करणा श्रेयोर्थं संभवनाथ विंबं का० श्री साधू पुर्णिमा पक्षे श्री पुण्यचंद्र सूरीणामुपदेशेन प्र० श्री विजयभद्र सूरिणा कडी वास्तव्यः।

संबत १५३४ बर्षे - - शु० ३ दिने सा० अरसी भाया रानूं पुत्र सा० लुणाकेन भार्या टीसू प्रमुख कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्री धर्मनाथ विंबं कारापितं प्रतिष्ठितं तपा गच्छे श्री लक्ष्मी सागर सूरिभिः पान विहार नगरे।

संबत १५५३ बर्षे माह सुदि ६ दिने वारडेचा गोत्रे सा० कोहा भा० सोनी पु० साह सीहा सहजा सीहा भा० हीरूंश्रेयोर्थं श्री कुंथुनाथ विंबं कारितं प्र० श्री कारंट गच्छे श्री - - सूरिभिः।

संबत १५७० बर्षे आषाढ़ सुदि २ रबौ श्री श्रीमालान्वये डउडा गोत्रे साह श्री चंद्र पुत्र चौताल्हण अजय राजा रायमल्ल आसधीर आजा भार्या केली पुत्र सा० योगा इल्हा शकतन पासा नरपाल साह सहसमल्ल पुत्र चिः कीर्तिसिंह साह रायमल्ल पुत्र हेमा गजपति ठकुरसी। सा योगा पुत्र महिपाल ठ० इल्हा भार्या इल्हणदे पुत्र सहसमल्ल सीहमल्ल साह आसधर भार्या हासी सिंगारदे पुत्र राया शकतन भा० शकतादे पुत्र षेता जइतमल। षेता पुत्र भैरोदास जइतमलेन राया शकतन पुण्यार्थ श्री शांतिनाथ चउबीस पट्ट कारित प्र० श्री धर्मघोष गच्छे श्री साधुरत्न सूरि पट्टे श्री कमलप्रभ सूरि तत्पट्टे श्री उदयप्रभ सूरिभिः।

।।श्री विमलनाथजी का मंदिर।।

इस मंदिर का निर्माण संवत् १९४९ में श्री छतरपत सिंहजी दूगड़ द्वारा कराया गया था। यह २९४९.२४५८ वर्ग मी० भूमि पर बना हुआ है। यहाँ पर अष्टधातु की ८ और पाषाण की ७ मूर्तियाँ हैं। यहाँ के मूल नायक श्री विमलनाथजी स्वामी है। इस मंदिर में सलग्न धर्मशाला, उपाश्रय, आयम्बिल खाता तथा रसोड़ा आदि चलते हैं। इस मंदिर का रख-रखाव 'भगवान विमलनाथ स्वामी का मंदिर, ट्रस्ट' द्वारा किया जाता है। मन्दिर के पास ही दादा साहब का मन्दिर है जिसमें दादा साहब की जीवनी के कई बहुमूल्य चित्र लगे हुए हैं।

लेख–

संवत १४८२ बर्षे ज्येष्ट बदि ५ शनि० दुगड़ गोत्रे सा० धीडा पु० डाड़ा पुत्र साटा हारा रग सुकनाभ्या डाडा पितृव्य सा० रुल्हा पु० रेडा श्रेयसे श्री आदिनाथ विंबं कारितं प्र० बृहगच्छीय श्री अमरप्रभ सूरिभिः।। शुभं भवतुः।

संबत १५१५ बै० व० ५ अतरी ग्रामे प्राग्वाट सा० आसा भा० संसारी पुत्र सा० कर्म सीहेन भा० सारु सुत गोइंद गोपा हापादि कुटुंब युतेन भातृज माहराज श्रेयसे श्री मुनि सुब्रत बिंबं का० प्र० तपा श्री सोम सुंदर सूरि शिष्य श्री रत्नशेखर सूरिभिः।।

सं० १५५१ बर्षे बैशाख सुदि १३ दिने श्री उकेश बंशे सखवाल गोत्र सा० लाला भा० ललतादे पुत्र सा० जावडेन भा० जवणादे पुत्र रायपाल तेजा वेला लीला रामपाल भार्या आंछू पुत्र लोहंट प्रमुख सपरिवार युतेन श्री मुनि सुब्रत बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं श्री खरतर गच्छे श्री ३ जिनसमुद्र सूरिभिः।।

ॐ संवत १५७६ बर्षे श्री खरतर गच्छ भाड़ीया गोत्रे सा० नाथू पुत्र सा० पाल्ह सा० सकू भा० नीप्पा रा – सटकया मपसीसू प्रमुख कुटुंबिकया श्री आदिनाथ बि० का० भ० श्री जिनहंस सुरिभिः प्रतिष्ठित ।।श्री।।

सं १६५७ वर्षे वै० श्रु० ५ भौमे श्रीमाल ज्ञातीय ढोर गोत्रे सा० धरमगज भार्या बीरू सुत सा० सतीदास भार्या वा० इंद्राणी ताभ्यां पुण्यार्थ श्री शांतिनाथ बिंबं कारितं प्र० खरतर गच्छे श्री जिनचंद्र सूरिभिः। श्री जिनभानु सूरिभिः। श्री जिनभानु सूरिणामुपदेशेन। अमाई ४२ वर्षे श्री अकबर राज्ये।

रौप्य की मूर्ति पर :

।। सं० १९२० मि। आसोज सुदि ९ तिथो बुधवारे मू। बाबु श्री प्रताप सिंघजी तत्पुत्र लक्ष्मीपत्त चि। धनपत्त छत्रसिंघ श्री आदिजिन बिंबं कारापितं वा सदालाभ प्रतिष्ठितं।। शांति जिनं, नेम जिनं, पार्श्व जिनं, वीर जिनं पञ्चतिर्थी। मिः मिगसर सुद २।।श्री।।

।।श्री सम्भव नाथजी का मन्दिर।।

श्री मकसूदाबाद श्रीसंघ द्वारा संवत् १८८४ में इस मंदिर का निर्माण किया गया। यह मंदिर १५९९.४८५० वर्ग मी० भूमि पर स्थित है। यहाँ के मूल नायक श्री संभवनाथजी है। वर्तमान में इस मंदिर की देख-रेख 'श्री श्रीसंभवनाथ देव ठाकुर का बालूचरस्थ खरतरगच्छ पंचायती भंडार कमेटी, जियागंज ट्रस्ट' द्वारा की जाती है। इस मंदिर में अष्टधातु की १८ प्रतिमाएँ एवं पाषाण की ३ प्रतिमाएँ है। इस मन्दिर में दादा साहब का मन्दिर व खरतर गच्छ उपाश्रय भी है।

पाषाण की मूर्तियों पर :

संवत १८४४ मिते बैशाख सुदि ५ रबौ। श्री बालूचर पुरे। भ० श्री जिनचंद्र सूरिजी विजय राज्ये वाचनाचार्य श्री अमृतधर्म गणिनां० पं० क्षमाकल्याण गणिः। तच्च कुमारादि युतानामुपदेशतः श्री मक्सूदावाद वास्तव्य समस्त श्री संहेन श्री सम्भव जिन प्रासादः कारितः प्रतिष्ठापितश्च बिधिना। सतां कल्याण बृध्यर्थम्।।

अथ चैत्य बर्णनं। निधान कल्पैर्नवभिर्मनोरमै। र्बिशुद्ध हेम्नः कलशैर्बिराजितं।। सुचारु घंटावलि कारणाकृति। ध्वनि प्रसन्नी कृत शिष्टमानसम्।।१।।चलत्पताकाप्रकरैः प्रकाम। माकारयन्नुनमंनिन्द्यसत्वान्।। निषेधयन्निश्चित दुष्टबुद्धीन्। पापात्मनश्रापततः कथंचित्।।५।। संसेव्यमानं सुतरां सुधीभि। र्भव्यात्मभिर्भृरितर प्रमोदात्।। बालूचराख्ये प्रवरे पुरेदो। जीयाच्चिरं सम्भवनाथ चैत्यम्।।३।।

धातुयों की मूर्ति पर :

ॐ संवत १५१५ बर्षे आषाढ़ बदि १ उकेश बंशे ढींक गोत्रे म० सिवा भा० हर्षु पु० म० हीराकेण भा० रंगादे पुत्री सेनाइ प्रमुख परिवार युतेन श्री चंद्रप्रभ बिंबं कारितं श्री खरतर गच्छे श्री जिनभद्र सूरि पट्टे श्री जिनचंद्र सूरिभिः प्रतिष्ठितं श्रीः।।

सं १५१९ बर्षे आषाढ़ बदि १ श्री मंत्रिदलीय ठ० लाधू भार्या धर्मिणि पुत्र स० अचल दासेन पुत्र उग्रसेन लक्ष्मीसेन सूर्यसेन बुद्धिसेन देवपाल वीरसेन पहिराजादि युतेन स्वश्रेयसे श्री आदिनाथ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं श्री खरतर गच्छे श्री जिनसागर सूरि पट्टे श्री जिन सुन्दर सूरि पट्टालंकार श्री जिनहर्ष सुरिवरैः।।श्री।।

सं० १५२३ बर्षे बैशाख बदि ४ गुरौ श्री उपकेश बंशे स० देल्हा भार्या दुल्हादे पुत्र वकुआ सुश्रावकेण भार्या मेधू पुत्र जयजइता पौत्र पूना सहितेन स्वश्रयसे श्री अञ्चल गच्छेश्वर श्री जय केसरि सूरीणामुपदेशेन श्री सम्भवनाथ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं श्री संघेन।

सं १५२४ बर्षे मार्गशीर्ष सुदि १० शुक्रे उपकेश ज्ञातौ। आदित्यनाग गोत्रे सं० गुणधर पुत्र स० कालण भा० कपूरी पुत्र स० क्षेमपाल भा० जिणदेवाइ पुत्र सा० सोहिलेन भातृ पास दत्त देवदत्त भार्या नानू युतेन पित्रौः पुण्यार्थ श्री चंद्रप्रभ चतुर्बिशति पट्टः कारितः प्रतिष्ठितः श्री उपकेश गच्छे ककुदाचार्य सन्ताने श्री कक्क सूरिभिः श्री भट्टनगरे।।

सं १५२५ बर्षे ज्येष्ट व० १ शुक्रे उपके० पत्तन बास्तव्य सा० देवा भा० कपूरी पु० सा० आसा भा० नाऊं पु० हर्षा भा० मनी भा० साइआ रत्नसी सा० आसकेन रत्नसी नमि० श्री वासुपूज्य बिंबं उपश० श्री सिद्धाचार्य सन्ताने प्र० भ० श्री सिद्ध सूरिभिः।

ॐ संबत १५२७ बर्षे ज्येष्ठ सुदि ८ सोमे प्राग्वाट ज्ञातीय वु० गांगा वु० मुजा पुत्र वु० महिराज भा० रमाइ श्राविकया श्री बासुपूज्य बिंवं कारितं श्री खरतर गच्छे श्री जिनसागर सूरी श्री जिनसुन्दर सूरि पट्टराज श्री ३ जिनहर्ष सूरिभिः प्रतिष्ठितं श्रीरस्तु कल्याणं भूयात्।

सं १९३४ बर्षे उपकेश ज्ञातीय बांभ गोत्रे संघवी जाटा भा० जयतलदे पु० माणिक भगिन्या वीरिणी नाम्न्या श्री धर्मनाथ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं तपा गच्छे श्री रत्नशेखर सूरि पदे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः।

सं १५९१ बर्षे बैशाख बदि ६ शुक्रे प्राग्वाट ज्ञातीय म० पाल्हा पुत्र भ० पांचा भार्या बाइदेऊ पुत्र म० नाथा भार्या श्रा नाथी पुत्र म० बिद्याधरेण पु० म० हंसराज हेमराज भीमा पुत्री इंद्राणी इत्यादि कुटुंब युतेन श्रेयोर्थ श्री आदिनाथ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं कुतव पुरा गच्छे श्री इंद्रनन्दि सूरिपट्टे श्री सौभाग्य नन्दि सूरिभिः श्री पत्तन वास्तव्यः।।

सं० १६०० बर्षे ज्येष्ट सुदि ३ शनौ श्री श्रीमाल ज्ञातीय सा० जैठा भा० मल्हाई पुत्र सोनाकर भा० वाइ कमलादे पु० सोना वीराकेन श्री पूणिमा पक्षे श्री मुनि रत्न सुरिणा मुपदेशेन श्री श्रेयांसनाथ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं श्री संघेन।। शुभं भवतु कल्याणमस्तु।।

रौप्य की मूर्त्ति पर :

संबत १९०३ शाके १७६८ प्र। माघ मासे कृष्ण पञ्चम्यां भृगौ वासरे श्री मक्षुदावाद वास्तव्य ओसवाल ज्ञाती बृद्धशाखायां साह निहालचन्द इंद्रसिंघ स्वश्रेयोर्थ श्री शांतिनाथ जिन बिंवं कारापितं। खरतर गच्छे श्री शांतिसागर सूरिजिः प्रतिष्ठितं। तप्पा सागर गच्छे।

राय धनपत सिंहजी का घरदेरासर :

सं० १९२० फा० कृ० २ बुधे प्रताप सिंहजी दुगड़ भार्या महताब कुंवर चंद्रप्रभ पञ्च तीर्थीका। उ। सदा लाभेन प्र० श्री अमृत चंद्र सूरि राज्ये सं १९४७ आषाढ़ शुक्ल १० आत्मनः कल्याणार्थ।

किरतचन्दजी सेठिया का घरदेरासर – चावलगोला।

सं० १५३३ बैशाख बदि ४ प्राग्वाट व्य० अपा भा० आल्ही पुत्र व्य० भरसीहेन भा० पह पु–साल्हादि कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्री बासुपूज्य बिंबं का० प्र० तपा रत्नशेखर सूरि पदे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः।

।।श्री सांवलियाजी का मन्दिर–कीरतबाग।।

श्रीसंघ समाज द्वारा १७७३ ई० में निर्मित यह मंदिर जियागंज में स्थित है। इस मंदिर के मूल नायक २३वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी और २२वें तीर्थंकर श्री बासपुज्यजी है। यहाँ पर अष्टधातु की २ और पाषाण की ६ मूर्तियाँ हैं। यह मंदिर ४०५१३.६९९ वर्ग मी० पर स्थित है। यहाँ पर संवत् १८२१ में दादाबाड़ी का निर्माण हुआ था।

पाषाण की मूर्त्तियों पर :

।।श्री सं० १८३० माघ शुक्ल ५ चंद्रे श्री पार्श्वचंद्र गच्छे उ० श्री हर्षचंदजी नित्यचंद्र जीत्कानामुपदेशेन। ओस बंशे गांधी गोत्रे साहजी श्री कमल नयनजी तत्पुत्र सा० उदय चंद्रजी तत्धर्मपत्नी तथा ओस बं० गहलड़ा गोत्रे जगत्सेठजी श्री फत्तेचंद्रजी तत्पुत्र सेठ आणन्द चंद्रजी तत्पुत्री वाइ अजबोजी श्री मत्पार्श्वनाथ बिंबं कारापितं। प्रतिष्ठितश्च वि० सूरिभिः श्री भानुचंदेणति आचंद्रार्कचिरं नन्दतात्भद्रं भूयाश्चश्रियं।

।। श्री सं० १८३० माघ शुक्ल ९ चंद्रे श्री पार्श्वचंद्र गच्छे उ० श्री हर्षचंद्रजी नित्यचंद्र जीत्कानामुपदेशेन ओस बं० गाँधी गोत्रे सा० श्री कमल नयन तत्पुत्र सा० उदय चंद्रजी तत्धर्मपत्नी तथा ओस बंशे गहलड़ा गोत्रे जगत्सेठ श्री फतेचंद्र जी तत्पुत्र सेठ आणन्द चंद्र तत्पुत्री

बाइ अजबोजी श्री बासुपूज्य बिंवं कारापितं। प्र० सूरि श्री भानुचंद्रेणेति भद्रं भूयाछिवं सदा।।

पाषाण की मूर्तियों के चरणों पर :

सं० १८३० बर्षे माघ शुक्ल ४ चंद्रबासरे ओस बंशे गांधी गोत्रे सा० श्री कमल नयन जी तत्पुत्र सा० उदयचन्द्र जी तद्भार्या बाइ अयबोजीकेन श्री पार्श्व प्रथम आर्यदिन्न गणधर पादुका कारापितं।

सं० १८३० बर्षे माघ शुक्ल ५ सोमे गांधी गोत्रे सा० श्री कमल नयनजी तत्पुत्र सा० श्री उदयचंद्र जी तत्धर्मपत्नी बाइ अजबोजीकेन श्री बासुपूज्य प्रथम सुभूम गणधर पादुका कारापितं।

सं० १८६१ चैत्र शुक्ल पञ्चम्यां शनिबासरे चंद्र कुलाधिप श्री जिनदत्त सूरीणां चरण स्थापनं श्री संघाग्रहेण श्री जिनहर्षे सूरीणामुपदेशात्प्रतिष्ठितं।।

धातु की मूर्त्तियों पर :

सं० १५१४ बर्षे बैष ब० ४ उके० व्य० गोइन्द भा० राजू पुत्र नाथू भार्या रुपिणि भातृ - नाल्हा केन भार्या लीलू प्रमुख कुटुंब युतेन श्री श्रेयांसनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री सोमसुन्दर सूरिपट्टे श्री रत्नशेखर सूरि राज्येः।। कालधरी।।

सं० १५३० बर्षे चैत्र बदि ५ गुरू रजीआण गोत्रे हुवड़ ज्ञातीय दोसी ठाकुर सी भा० नाइ दूसी सुत दोसी बालाकेन हरपाल दासा पौगा युतेन मातृ श्रेयसे श्री कुंथुनाथ बिंब कारितं हुबड़ं गच्छे श्री सिंघदत्त सूरि प्रतिष्टितं। उपाध्याय श्री शीलकुञ्जर गणि।

सं० १९३१ बर्षे बैशाख बदि ११ सोमे श्री श्रीमाल ज्ञा० सा० गोआ भा० भाऊ सु० सा० साजण भा० मदोअरि सु० सा० लटकण भा० गुराइ सु० सा० सोम सा० सा० पासा सहसाख्यैः पितृ मातृ श्रेयसे श्री अजितनाथादि

चतुर्विशति पट्टः पुर्णिमा पक्षे श्री पुण्यरत्न सूरीणामुपदेशेम कारितः प्रतिष्ठितश्च बिधिना श्री अहमादाबाद नगरे।

।।श्री दादास्थान का मन्दिर।।

पाषाण के चरणों पर :

।।श्री ॐ नमः।। संबत १८२१ मिति माघ सुदि १५ दिने महोपाध्याय जी श्री १०८ श्री समयसुन्दर जी गणि गजेंद्राणां शिष्य मुख्योत्तम श्री १०५ श्री हर्षनन्दन जी शाखायां षंमितोत्तम प्रवर श्री ७ श्री भीमजी श्री सारंगजी तत्शिष्य पं० बोधाजी तत्शिष्य पं० हजारी नन्दस्य उपदेशेन सुश्रावक पुण्य प्रभावक कातेल गोत्रे साहजी श्री सोभाचन्द जी तत् भातृ मोतीचन्द जी श्री मत् बृहत् खरतर गच्छे जंगम युगप्रधान चारित्र चूड़ामणि भट्टारक प्रभु श्री १०८ श्री दादाजी श्री जिनदत्त सूरिजी दादाजी श्री १०७ श्री जिनकुशल सूरि सूरीश्वराणां पादुका कारापिता मकशूदाबाद मध्ये प्रतिष्ठितं महेन्द्र सागर सूरिभिः।। शुभमस्तु।

सं० १८७६ रा बर्षे मार्गशीर्ष मासे शुक्लपक्षे १० तिथौ शुक्रवारे बृहत श्री खरतर गच्छे जं०। यु०। भ०। श्री १०८ श्री जिनचंद्र सूरि सन्तानीय सकल शास्त्राशार्थ पाठन प्रधान बुद्धि निधान। श्री मदुपाध्याय जी श्री १०८ श्री रत्नसुन्दर गणिजिनराणां चरण स्थापन।। साहजी दूगड़ गोत्रीय श्री बाबु श्री बुधसिंह जी तत्पुत्र बाबु श्री प्रतापसिंह जी आग्रहेण प्रतिष्ठितं श्री रस्तुः कल्याणमस्तुः।

श्री आदिनाथजी का मन्दिर – कठगोला (नसीपुर-जियागंज)

नसीपुर जियागंज में स्थित इस मंदिर का निर्माण सं० १३१३ सन् १८८६ ई० में लक्ष्मीपतसिंहजी दूगड़ द्वारा कराया गया था। यहाँ दूगड़ परिवार के सुप्रसिद्ध विशाल बगीचे में जिनालय दादा बाड़ी एवं दर्शनीय कोठी बनी हुई है। जिनालय के मूल नायक भगवान श्री आदिनाथजी है। १४५१९०.०२८१ वर्ग मी० पर यह मंदिर है। यहाँ पर १० अष्टधातु की

और ७ पाषाण की मूर्तियाँ हैं। यह बंगाल में पर्यटन का एक महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल है।

The Jain temple attached with the garden house of late Rai Lachhmipat Singh Dugar Bahadur at Kathgola, is also a place of interest. This temple was built at a latter date and was sanctified with stone images of Padmaprabhu, Adinath and Parshanath. It attracts attention of Jain pilgrims from far and near and is well-maintained.

लेख–

ॐ संबत १४८९ बर्षे पौष वदि १० गुरौ श्री नीमा ज्ञातीयं गं० गड़दा भार्या संलषु तयोः सुतेन सह सायरेण स्वश्रेयसे श्री जीवत्स्वामि श्री सुपार्श्वनाथ बिंवं कारापितं प्रतिष्ठितं श्री बृहत्तपा पक्षे श्री रत्नसिंह सुरिभिः शुभंभवतु।

सं० १५३० बर्षे माघ सुदि ४ शुके सांबोसण बासि प्राग्वाट ज्ञा० व्य० सोना भा० माउ पु० व्य० नारद बंधु व्य० बिरूआकेन भा० बील्हणदे पु० देधर मेला साइपादि कुटुंब युतेन निज श्रेयसे श्री सम्भवनाथ विंबं का० प्र० श्री तपा गच्छे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः।

सं० १५०३ शाके १७६८ प्रवर्त्तमाने माघ कृष्ण ५ भृगु अहमदाबाद वास्तव्य ओसवाल ज्ञाती बृद्ध शाखायां सा० केसरीसिंह तत्पुत्र साह बिसंघजि तत्भार्या रुषमणी स्वअर्थे श्री आदिश्वर जिन बिंवं भरापितं श्री शांतिसागर सूरिभिः प्र०।।

।।श्री जगतसेठजी का मन्दिर-महिमापूर।।

जगतसेठ मानिकचन्द द्वारा बनाया प्राचीन मंदिर तथा प्रसिद्ध रंगमहल गंगा के गर्भ में समा गया तब नया मन्दिर बनाया गया। यह

कहा जाता है कि इस मन्दिर के लिए कसौटी पत्थर सेठ मानिकचन्द ने मुर्शीदकुला खाँ से प्राप्त किये थे जो गौढ़ के प्राचीन जैन मन्दिर के थे। मानिकचन्द ने मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ किया और फतेहचन्द ने उसे पूरा किया। लेकिन मन्दिर नष्ट हो जाने के बाद जगतसेठ फतेहचन्द द्वितीय ने मन्दिर का पुनः निर्माण किया।

Mahimapur, where the ancient house of the Jagatseths was situated, is now barren except a few mounds vovered by jungles. Portions of the old dilapidated walls made of small thin bricks are concealed in thickets. The famous Rung Mahal Palace of the Jagatseths are gone. Much water has flowed down the Bhagirathi since the Seth brothers were taken captive by Nabab Mir Kasim on that fateful night of April, 1763, and were thrown into the Ganga from Monghyr Fort.

The stately mansion of the Jagatseths stood on the eastern bank of the river, which ravaged the greater part of the Palace including three temples. Among these temples there was a Hindu temple, built of Dutch porcelain tiles by Jagetseth Hurrek Chand in 1798. Other two were Jain temples built by the First Jagatseth Fateh Chand in 1702. When the old temples were in tottering condition, Jagatseth Golab Chand removed the valuable stones and heaped them in his new palace compound. His son, Jagatseth Fatehchand, the last Jagatseth, built the persent temple with one of the two sets of valuable Kasauti stone stabs, so long preserved. Another set of slabs was carefully left apart. but the third set was swept away with the exmple by the Bhagirathi long ago.

The front of the persant Jagatseth Temple was panelled with Dutch tiles showing Biblical themes and the temple built in 1903, speaks feebly of the granduer that had been associated with the Jagatseths. Later the Dutch tiles were removed. According to the history preserved by the Seth family, Seth Manik Chand who accompanied Murshid Kuli Khan to Murshidabad from Dacca, received these Kasauti stone slabs from the Nabab as a present or on ancient Hindu temple, were bought from the ruins of Gaur. Manik Chand started the temples and Fateh Chand completed the works. But the temples were ruined in course of time and Fateh Chand II re-built the temple. The Seth family had Jain images made of pebbles, crystals and other precious stones, one of them a crystal image of Lord Kunthanath bore a date of 1664 with the price Rs. 80,000 inscribed thereon. The Seth's temple now has three images of Jain Tirthankars, Mallinath, Parshanath and Rishavdeva, and Parshanath is the central figure.

लेख–

सं० १५२२ बर्षे माघ बदि १ गुरो प्रा० ज्ञा० म० जेसा भा० सूरी पुत्र सर्वणेन भा० रुपाइ मातृ पितृ श्रेयसे स्वश्रेयसे श्री कुंथुनाथ बिंवं का० प्र० श्री साधु पूर्णिमा पक्षे पुण्यचंद्र सुरीणामुपदेशेन विधिना श्री बिजयचंद्र सूरिभिः।। श्री रस्तु।

सं० १५३६ ब० फा० सु० १५ प्राग्वाट व्य० हीरा भा० रूपादे पुत्र व्य० देपा भा० गीमति पु० गांगाकेन भा० नाथी पुत्र मेरा भातृ गोगादि कुटुंब युतेन श्री नमिनाथ बिंवं का० प्र० तपा गच्छे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः। पींकरवाड़ा ग्रामे मुंठलिया वंशे श्रीः।

सं० १५७९ बैशाख सुदि ६ सोमे उपकेश ज्ञातौ बलहि गोत्रे राका शाखायां सा० पासड भा० हापू पु० पेथाकेन भा० जीका पु० २ देपा दुदादि परिवार युतेन स्वपुण्यार्थ श्री पद्मप्रभ बिंवं कारितं प्रतिष्ठितं श्री उपकेश गच्छे ककुदाचार्य सन्ताने भ० श्री सिद्ध सूरिभिः दन्तराइ बास्तव्यः।

स्फटिक के बिंवं पर :

सं० १७१० ब० ज्ये० सु० १ श्री स्तम्भ तीर्थ वा० उकेश ज्ञा० गांधि गोत्रे प – सी सीपति भा० शिवा श्री कुन्थुनाथ बिंवं प्र० श्री बिजयानन्द सूरिभिः। तप (नय) करण।

रौप्य की मूर्त्ति पर :

सं० १७७६ बर्षे बैशाख शुक्ल ५ तिथौ। ओसवाल बंशीय श्रेष्ठ श्री माणिक चन्दजी स्वधमं पत्नी माणिक देवी प्रतिष्ठितं श्रीमत् चतुर्विशति जिन बिंवं चिरं जयतात्।। श्रेयोस्क्तः।। भद्र भवतुः।।१४

।।श्री नमिनाथजी का मन्दिर–कासिमबाजार।।

The temple of Neminath at Cossimbazar was perhaps the oldest Jain temple of Murshidabad District. At present the temple is totally gone and the images of the temple were removed elsewhere. This Jain temple once contained the images of all the Tirthankaras of the Jains. This temple was on the south-western bank of the Cossimbazar river, the main channel of the Bhagirathi now known as Kati-Ganga, and was place of Jain pilgrimage even in the 19th century. This temple was the central place, around which the Jain community lived during the hey-days of Cossimbazar. When the Neminath temple fell in ruins, the images were removed to different places and re-instated in new temples. Some of these old images are now in Jain temples

at Azimganj. Lalgola and even at Rajshahi ; and are being still worshipped by the devotees.

धातुयों की मूर्ति पर :

सं० १४८० बर्षे ज्येष्ठ बदि ५ उपकेश ज्ञातीय आयचणाय गोत्रे सा० आसा भा० वाच्छि पु० माजू नाहू भा० रूपी पु० खेमा ताल्हा सावड़ श्री नमीनाथ बिंबं का० पूर्वतलि० पु० आत्मा श्रे० उपकेश कुक० प्र० श्री सिद्ध सूरिभिः ।

सं० १५२९ बर्षे फागुण बदि १ दिने शुक्ले श्रीमाल बंशे साहू गोत्रे श्री सा० पहा पुत्र सा० पासा भा० पूनादे पुत्र साना पाइनादि परिवार परिवृतेन श्री श्रेयांसनाथ बिंवं स्वपु ज्यार्थ कारितं प्रतिष्ठितं श्री खरतर गच्छे श्री जिनभद्र सूरि पट्टे श्री जिनचन्द्र सूरिभिः।।

पाषाण की मूर्त्तियों और चरण पर :

सम्बत १५४९ बर्षे बैशाख सुदि ७ श्री मुलसंघे भट्टारकजी श्री जिनचंद्र देव साह जीवराज पापड़ीवाल.....।

सं० १७७९ बर्षे मिती फागुण सुधि ५ श्री गौतम स्वामी पादुका कारापित वाकरेचा गोत्रे सा० वीरदास पुत्र .....।

सम्बत् १७८० बर्षे मिती माह बदि ३ बार गुरु दिने कारितमिदं पंडित मुनिभद्र गणिवरेण प्रतिष्ठितञ्च विधिना उ० श्री कर्पूरप्रिय गणिभिः - - - का कास्माबाजार।

सं० १७८१ मिति आषाढ़ शुक्ल १० तिथौ शनिवारे पूज्य श्री हीरागरिजीना पादुका कारापिता सेठिया गुलाबचन्द।।

सं० १८२१ माघ शुक्ल १३ रबौ महोपाध्याय श्री नित्यचंद्रजी स्वर्गगतः। श्री पार्श्वचंद्र सूरि गच्छे।

सम्बत १७६७ बर्षे मिति आषाढ़ सुदि ९ शुभदिन बुधवारे श्री जिनकुशल सूरिजी सद्गुरुया चरणन्यासः कारितः श्री संघेन। कास्माबाजार वास्तव्य श्रावकैः सुगुणोज्वलैः। पूजनीयाः प्रतिदिनं गुरुपादाः - - - भिः१।।

।। जीर्ण मन्दिर–दस्तुरहाट ।।

ॐ भगवते नमः।। सम्बत् अठ्ठारह सै ग्यारह (१८११) कृष्ण द्वादसी भृगु बैशाख। ओसवाल कुल गोत्र गोखरु श्री मजैन धर्मक। साख।। सभाचन्द के अमरचन्द सुत तिन सुत मुहकमसिंह सुनाम। तिनके धाम राय मन्दिर यह भागीरथी तीर विश्राम।।

जगत सेठ

मुर्शिदाबाद बंगाल की राजधानी बनने के साथ-साथ एक और महान घटना तथा एक नया अध्याय बंगाल की राजनीति में जुड़ा वह था जगतसेठ का प्रादुर्भाव। वैभवशाली, ऐश्वर्ययुक्त, धनकुबेर, सौभाग्यलक्ष्मी की कृपा दृष्टि जिनके ऊपर थी, दिल्ली के बादशाह, बंगाल के नबाव तथा अनेक राजा जमींदार सामन्तों को अर्थ सहायता देने वाले, यहाँ तक कि अंग्रेजों का व्यापार भी जिनके अनुग्रह के बिना असमर्थ था। भारत और मुर्शिदाबाद के गौरव जगतसेठ का बंगाल में प्रादुर्भाव इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। सारे राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कार्य उनके परामर्श के बिना सम्पन्न नहीं होते थे। १८वीं शताब्दी में उनके वंश के सदस्यों की परिगणना बंगाल के भाग्य विधाताओं में की जाती थी। उनकी गद्दी भारत में अनेकों जगहों में थी। उनके कोषागार में अरबों-करोंड़ो की सम्पत्ति थी जिसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता था। यहाँ तक कि मराठों द्वारा दो बार उनकी गद्दी लूटे जाने पर भी उनको कोई फर्क नहीं पड़ा। उस समय पूरे भारत में उनके समान कोई भी सेठ नहीं था जिससे उनकी तुलना की जा सके। सम सामायिक मुस्लिम इतिहासकारों ने लिखा है कि सेठ मानिकचंद के पास अपार सम्पत्ति थी।

The contemporary Muslim historians wrote that Seth Manik Chand had huge amount of gold and silver which could not be measured in any terms. He had a huge stock of emeralds. Proverbially it was said that he could stop the flow of river Ganga by constructing a wall of gold and silver accross its stream.

It is believed that of him in those days. Several times his wealth was looted but he continued to remain the richest person.

ऐसे जगत सेठ का आदि निवास जोधपुर जिले के अन्तर्गत नागोर में था। इनके पूर्व पुरुष गिरधर सिंह मारवाड़ के खजवाड़ा गाँव में रहते थे। आय के साधन न होने से सम्पन्न होते हुए भी धीरे-धीरे आर्थिक संकट से गुजरने लगे। संवत १५५२ में आचार्य जिनहंस सूरिजी के संपर्क में वे आये और जैनधर्म स्वीकार किया। उसके बाद उनके दिन फिरने लगे और फिर से संपन्न हो गये। उनके पुत्र गेलाजी हुए जिनके नाम पर परिवार का गोत्र गेलड़ा हो गया। कालान्तर में यह लोग नागोर में आकर बस गये और हीरानन्दजी के समय आर्थिक हालत पुनः डावांडोल हो जाने के कारण उन्होंने व्यापार के लिए परदेश जाने की योजना बनायी। यति जी से मुहूर्त निकलवाया। यति जी ने पूर्व दिशा की ओर जाने का निर्देश दिया। हीरानन्दजी निकल पड़े परन्तु कुछ दूर जाने पर उन्हें रास्ते में एक फन वाला सांप दिखाई दिया। जिसको उन्होंने अपशकुन समझा और वापिस लौट आये। यति जी के पास गये और बताया। यतिजी ने कहा कि यह बहुत अच्छा सगुन था उस समय चले जाते तो छत्रपति बनते। अब भी जाओगे तो जगतपति जरूर बनोगे। हीरा नन्दजी पूर्व की ओर चल पड़े और बीहड़ रास्ते को पार करके पन्द्रह दिन में आगरे पहुँच गये। उस समय आगरा में शाहजहाँ का राज्य था और आगरा विश्व का अति सम्पन्न और वैभवपूर्ण नगरी मानी जाती थी। वहाँ पर उन्हें एक मोदीखाने की दुकान पर तीन रूपये महीने की नौकरी मिली। वे गणित में होशियार, मेहनती और ईमानदार थे, उनके दुकान के ग्राहकों में सरकारी अधिकारी भी थे जो हीरानन्द के व्यवहार से खुश थे। उनमें मीलजुमला नाम के अधिकारी से जो औरंगजेब का हाकिम था उसकी हीरानन्द से काफी घनिष्ठता

हो गयी। जब मीरजुमला का तबादला पटना में हुआ तो वह अपने साथ हीरानन्द को भी पटना ले गया और वहाँ उसे एक दुकान करवा दी। जैसे-जैसे मीरजुमला की तरक्की होती गयी हीरानन्द की दुकान भी बढ़ने लगी। पटना उस समय व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। यहाँ से शोरा, शक्कर, लाह, कस्तूरी अफीम और रंगीन छींटे दूसरे मुल्कों को जाती थी तथा दूसरे मुल्कों से बहुत सी चीजें आयात होती थी। कलकत्ता उस समय बस रहा था। औरंगजेब के पोते अजीमुशान ने केवल चौदह हजार में सूतापट्टी, गोविन्दपुर और कलकत्ता अंग्रेजों को बेच दिया था। चिरसुरा, हुगली, राजमहल, ढाका और पटना की गिनती बड़े-बड़े शहरों में होती थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी अपनी शाखा पटना में खोली उस समय यह कम्पनी साधारण स्थिति में थी और हीरानन्द कम्पनी को ऊँचे ब्याज पर रूपया उधार देते थे। इस प्रकार सन् १६८५ ई० तक तैतीस वर्षों में हीरानन्द अपनी मेहनत और ईमानदारी से लखपती बन गये। चारों तरफ उनकी साख बढ़ गयी तथा बिहार के अलावा बंगाल के राजमहल और ढाका में भी उनके व्यापार का विस्तार हो गया था। मीलजुमला के बाद शाहिस्ताखान और औरंगजेब का बेटा मोहम्मद आजम नाजिम हुए परन्तु हीरानन्द सबके विश्वासपात्र थे। अंग्रेजों का भी कोई काम रुक जाता या नाजिम से सिफारिश करानी होती तो वे हीरानन्द के पास जाते थे। अगले छब्बीस वर्षों में वे लखपती से करोड़पति बन गये। साठ वर्ष पहले बीस वर्ष की आयु में वे नागोर से पैदल चलते मजदूरी करते हुए आगरा पहुँचे थे। उनके जीवन में ही पचास वर्ष राज्य करके औरंगजेब की मृत्यु हुई और उसका पुत्र मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। बंगाल, बिहार के बहुत से गरीब हिन्दुओं का जजियाकर सेठ हीरानन्द की कोठी से दिया जाता था। मारवाड़ से बहुत से युवकों को लाकर उन्होंने यहाँ पर बसाया और उन्हें सहायता दी। सन् १६६८ में उड़ीसा के

अफगानों में मेदनीपुर के जमीदार शोभासिंह से मिलकर एक बड़ी बगावत कर दी। औरंगजेब पन्द्रह वर्षों से दक्षिण में उलझा हुआ था ऐसे संकट के समय सेठ हीरानन्द ने बिहार के नाजिम बादशाह के पोते अजीमुशान की मदद की। यद्यपि हीरानन्द को जगतसेठ की पद्वी नहीं मिली फिर भी लोग उन्हें जगतसेठ मानते थे। उन्होंने बिहार, बंगाल और राजस्थान में अनेक धर्म स्थानों का निर्माण कराया था। सन् १७११ ई. में सत्तासी वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई। उनके सात पुत्र एवं एक पुत्री थी। उनके व्यापार के विभिन्न शाखाओं का काम उनके सातों लड़के सभालते थे। अतः हम कह सकते है कि जगतसेठ के वंश की उन्नति की पृष्ठभूमि पटना में निर्मित हुई। पटना में हीरानन्द ने जैन धर्म के मंदिर एवं श्री जिनदत्त सूरिजी की दादाबाड़ी बनवायी थी। उस समय पटना सिटी चौक के उत्तर में एक गली पायी जाती थी जिसे हीरानन्द हास की गली कहते थे। उनका बनाया हुआ मकान कालवशात गंगा के गर्भ में चला गया। घाट भी उनका ही बनवाया हुआ था। दस्तावेजों से मालूम पड़ता है कि हीरानन्द शाहजादा सलीम के कृपापात्र एवं खास जौहरी थे। दिल्ली में हीरानन्द की गली प्रसिद्ध है। पूर्णचन्द्रजी नाहर के संग्रह से प्राप्त माणक्यदेवी रास नामक ऐतिहासिक कृति में जगतसेठ के वंश के विषय में लिखा हुआ है—

नगर सुवश पटणैबसै, ओशवंश सिरदार।
गोत गहिलडा जगप्रगद, दौलतवंत दातार।।१
हीनन्द नरीन्द्रसम, मानं सहु कोई आंण।
सत पुत्र तेहने प्रगट, अदभुत गुण माणि खांण।।२
मांणकचंद्र नरेन्द्रसम, चौदह विद्या भंडार।
लछन अंग बत्तीस तसु, काम तणो अवतार।।३
वर देषित हरषित भए, कीनो तिलक तिवार।
करी सझाई व्याहनी, रची बरात विस्तार।।४

सेठ हीरानन्द के पांचवें पुत्र माणकचन्द हुए। मुर्शीदकुली खाँ के संग उनका बहुत हार्दिक सोहार्द था। मुर्शिदकुली खाँ के संग ही वे ढाका आये जो उस समय बंगाल की राजधानी थी। बंगाल के नाजिम अजीमुशान के साथ मुर्शिदकुली खाँ का मतभेद उत्पन्न होने से मुर्शिदकुली खाँ ढाका से मकसूसाबाद आये तो मानिक चन्द्रजी भी उनके साथ आये। मानिक चन्द्र की सलाह से ही मुर्शीद कुली खाँ ने मुर्शिदाबाद शहर बसाया और मानिक चन्द्र की परामर्श से ही सब राज-काज चलाने लगे। वहीं महिमापुर में मानिक चन्द्र ने अपनी विशाल और शानदार हवेली बनवायी। मुर्शीदकुली खाँ के किये प्रशासनिक और आर्थिक सुधारों के परामर्श दाता मानिक चन्दजी थे। इन आर्थिक सुधारों के कारण ये दोनों बंगाल और बिहार की जनता के दिलों में बस गये थे। नबाव से उन्होंने टकसाल बनाने की इजाजत ले ली थी। उनकी टकसाल में ढले सिक्के पूरे राज्य में चलते थे।

When Seth Manik Chand established his Kothi at Dacca, the then capital of Bengal, there was a political shake up in the country. The Mughal Emperor Aurangzeb was losing his influence and the chiefs at distant places were increasing their personal influence and power to establish independent states. Aurangzeb had appointed Murshidkuli Khan as Diwan of Azimusshan, the Nawab of Dacca. Intelligent, courageous and bold, both Murshidkuli Khan and Seth Manik Chand, who had brotherly affection for each other, wielded great influence and power in Dacca. Seth Manik Chand had much helped him in becoming the Nawab of Bengal. The town of Murshidabad along river Ganga was set up with joint efforts of them both. Seth Manik Chand invested heavily to make it a prosperous town.

They sent an annual revenue of rupees two crores to Aurangzeb in place of the existing revenue of rupees one crore and thirty lakhs. Pleased with this, Aurangzeb shifted the capital from Dacca to Murshidabad. Azimsusshan remained only a titular chief. The people of Bengal, Bihar and Orissa regarded Murshidkuli Khan and Seth Manik Chand as uncrowned princes of their heart. Seth Manik Chand always generously helped the poor, redeemed the miseries of the oppressed and the peasants and made their condition better both financially and socially, Bengal became much peaceful and prosperous as a result of his wise fiscal policies and development of trade and commerce by him.

Jagat Seths of Murshidabad, Prograssive Jains of India.

जहाँदार शाह के वध के बाद दिल्ली का बादशाह फखरुशियर बना। वह एक राजपूत कन्या से विवाह करना चाहता था इस कारण कोई भी हकीम और बैद्य उसके रोग का निदान नहीं कर पा रहे थे। उसी समय एक अंग्रेज व्यापारियों का दल दिल्ली आया जिसमें हेमल्टन नामके डाक्टर ने बादशाह को रोगमुक्त कर दिया। बादशाह ने उन्हें मुँहमांगा इनाम देने का वचन दिया जिसके बदले अंग्रेजों ने बंगाल के कुछ परगने मांग लिये। इसी घटना से बंगाल में अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ी। बादशाह का फरमान जब मुर्शिदकुली खाँ को मिला तो उसने बिना तामिल किये वापिस भेज दिया। बादशाह ने क्रोध में आकर मुर्शिदकुली खाँ को बर्खास्त कर सेठ मानिकचन्द को बंगाल का दीवान बना दिया लेकिन सेठ ने उसे स्वीकार नहीं किया और उनके अनुरोध पर बादशाह ने मुर्शीदकुली खाँ को पुनः दीवान नियुक्त किया। अनेक मुस्लिम इतिहासकारों, लेखकों ने बंगाल में नबावों की पराजय का कारण जगतसेठ को बतलाते हुए उनकी आलोचना की है लेकिन यह

गलत है, जबकि जगतसेठ यदि चाहते तो स्वयं बंगाल के हाकिम बन सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया।

On receiveing the Farman for his appointment as Diwan, Seth Manik Chand met Murshidkuli Khan and removed the misunderstanding from his mind. With his consultation he wrote to the Emperor that though he accepts the post but again hands it over to deserving Murshidkuli Khan. It shows the great character of Seth Manik Chand. He tackled the order about releasing the land to the English very intelligently and managed that instead of transfer of land to them the English may do business in the area without paying custom-tax.

The entire revenue of Bengal, Bihar and Orissa was collected by Jagat Seth and the currency minted by him was used in these three States.

Progressive Jains of India

सेठ माणकचन्द ने भागीरथी नदी के किनारे पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ का कसौटी पत्थरों का भव्य मंदिर का निर्माण किया। इन मूल्यवान कसौटी पत्थरों को नबाव मुर्शिदकुली खाँ से खरीदा था जिन्हें मुर्शिदकुली खाँ गौढ़ के प्राचीन मौर्यकालीन महलों में बने मंदिर से लूटकर लाया था। बाद में भागीरथी के कटाव से मंदिर को बचाने के लिये कसौटी के पत्थर तथा मूर्ति को अन्यत्र दूसरी जगह स्थापित कर दिया। संवत् १९५८ में लार्ड कर्जन जब जगतसेठ के महल एवं मंदिर के भग्नावशेष देखने मुर्शिदाबाद पधारे तो इन पत्थरों के सौन्दर्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन पत्थरों को कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल में महारानी की प्रस्तरमूर्ति के आसनरूप में लगाने की इच्छा जाहिर की

थी। परन्तु जगतसेठ खानदान ने इसे उचित नहीं समझा। संवत् १९७६ में पुनः नये जैन मंदिर का निर्माण सेठ गुलाबचन्द के पुत्र सेठ फतहचन्द (द्वितीय) ने आरंभ किया, तब इन बहुमूल्य पत्थरों से मन्दिर को फिर अलंकृत किया गया। सेठ मानिकचन्द ने अपार धन सम्पत्ति के मालिक थे। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में उन्हीं की टकसाल में बने रूपये चलते थे। कर्नल जेम्सटॉड के अनुसार उनके पास इतना सोना-चाँदी था कि गंगा के ऊपर सोने की ईंटों का पुल बन सकता था।

जगतसेठ मानिकचन्द की धर्मपत्नी माणिक देवी थी। वह जिनधर्म में अटूट श्रद्धा रखने वाली परोपकारिणी तथा महातपस्वनी थी।

इलाहाबाद जिले में, गंगा के किनारे **साहजादपुर** नामक एक शहर है, प्राचीन काल में यह नगर बहुत ही समृद्धिशाली था, इस नगर का नाम कविवर पं० बनारसीदास जैन के **अर्द्धकथानक** में भी तीन-चार जगह आता है तथा तपागच्छीय सौभाग्यविजय कृत तीर्थमाला में भी उल्लेख मिलता है। इस महानगरी में ओसवाल वीराणी गोत्रीय पूरणमल नामक एक धर्मनिष्ठ एवं साधन-संपन्न श्रीमंत रहते थे इनकी पत्नी का नाम गुलाबदेवी था, जिसने वि. सं. १७३० श्रावण बदी ११ को एक बालिका को जन्म दिया यह बालिका अति रूपवान एवं कौमलांगी थी, अतः इनका नाम **किशोरकुमारी** रखा गया। **होनहार विरवान के होत चीकने पात** की उक्ति के अनुसार बचपन से ही कुछ विलक्षण लक्षण माता-पिता ने उसमें देखे, द्वितीया के चंद्र की तरह पूरणाकार होकर किशोरी ने कौमार्यावस्था से युवावस्था में पदार्पण किया।

किशोरी के षोड़शी होने पर, पूरणमल को उसके विवाह की चिंता हुई। सुयोग्य वर की खोज में देश देशान्तरों में दूत भेजे गये। अंत में पटने के प्रमुख व्यापारी हीरानंद शाह के सुपुत्र मानिकचंद से किशोरकुमारी का वाग्दान निश्चित हुआ, जो आगे जाकर **सेठ** पद से

विभूषित एवं जगत् सेठ के पिता हुए। ज्योतिषियों ने विवाह का शुभ मुहूर्त निकाला। हीरानंदशाह बरात लेकर साहजादपुर गये। बारातियों को मिष्ठान भोजन तथा आतिथ्य से अपूर्व आवभगत की गयी। पूरणमल ने दहेज में बहुतसा धन देकर किशोर कुमारी को मानिकचंद के साथ विदा किया।

घर की लक्ष्मी बहु मानी जाती है। हीरानंद शाह के घर में किशोरकुमारी के बहु-रानी रूप में पदार्पण करते ही धन वैभव, यश और राजसत्ता में उत्तरोत्र वृद्धि होती देखी गई। विवाह के बाद उनका नाम माणिक देवी रखा गया।

माणिकदेवी के गृह प्रवेश से हीरानंद शाह के घर की तो वृद्धि हुई ही, साथ ही उस नगर की भी बहुत वृद्धि हुई यह एक माणिकदेवी के पुण्यशाली जीव होने का सूचक था।

माणिक देवी बहुत दातार थी। उन्होंने गरीबों के लिये **सदाव्रत** खोल रखे थे। वे प्रतिदिन अपने हाथों से भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र देकर ही स्वयं भोजन करती थी। उनका दिल दुःखी दरिद्रों के प्रति बहुत दयावान था।

स्वधर्मी-बन्धु की सेवा शास्त्रोक्त समझकर जगत सेठ परिवार भी उन दिनों तन-मन और धन से सबकी मदद करता था। फलतः मुर्शिदाबाद में जहाँ पहले दो-चार घर ही जैनियों के थे वहाँ माता माणिक देवी की प्रेरणा व मदद से हजारों जैन गृहस्थ वहाँ आकर बस गये। इन्होंने लाखों रूपये स्वधर्मी बन्धुओं की सेवा में व्यय किये। सम्राट फरूखशियर माणिक देवी के उच्च आदर्शमय जीवन की कहानी सुन कर इन्हें बहुमूल्य आभूषण प्रदानकर **सेठानी** के पद से विभूषित किया और पाँव में सोना पहनने का अधिकार दिया।

वह सेठ माणिक चन्द की मृत्यु के पश्चात् २७ वर्ष तक जीवित रही। धर्म, भक्ति, साधना और सेवा के अतिरिक्त माणिक देवी की साहित्य में भी रुचि थी। इनकी प्रेरणा से एक कवि ने **भूपाल चतुर्विशतिका** नामक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इस ग्रन्थ की सचित्र प्रति में तथा अन्य एक ग्रन्थ में अपने परिवार की वंशावली सम्बन्धी ज्ञातव्य बातों को माणिकदेवी ने लिखवाया जो वि. सं. १७७७ मिती फागुन बदि २ को पूरा हुआ था। अपने वैधव्य के २७ साल उन्होंने घोर तपस्या में व्यतीत किये। अपनी शेष आयु में एक वर्ष तक निरन्तर सोने की मुहरें दान की। माता माणिक देवी की दान मुग्धता पर प्रसन्न होकर कवि ने लिखा है।

कर्ण भोज विक्रम भए, सतयुग में दातार।
कलियुग में माणिकँदे जिसी, देखी नहीं संसार।।८८

सम्मेत शिखर का संघ निकालकर तीर्थ यात्रा की और उसके बाद उन्होंने अपनी कोठी में जिन मंदिर का निर्माण कराया।

अंत में अनशन धारण करके उन्होंने अपनी देह का त्याग किया। इस आदर्श श्राविका के विषय में पार्श्वचन्द गच्छवाचक हर्षचन्द के अनुज निहालचन्द नामक जैन मुनि ने सेठानी श्री माणिकदेवी रास की रचना १२५ पदों में की है। वे स्वयं सेठानी जी के धर्म गुरु थे और उनके उच्च आचार विचार और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। इस रास की रचना माणिक देवी के स्वर्गवास के बारह दिनों में की गयी है। उन्होंने उनके बारे में लिखा है कि—

सतजुग में सोल सती हुई, साधवी साधु अनेकों रे।
कलियुग में मोटी सती, माणिकदे सुविवेकों रे।।१
शास्त्रमांहि सुणता हता रे लाल, साधु-साध्विनी बात रे।
परतक्ष देखी आँख सुं रे लाल, माणिक देवी मात रे।।२

स्वर्गीय भँवरलालजी नाहटा ने माता माणिक देवी के विषय में लिखा है—

"माता माणिकदेवी के जीवन-प्रभा का अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि वे अत्यन्त धार्मिक वृत्तिवाली सदगृहस्थ थी। जैन धर्म व जिन पूजा पर उन्हें अटूट श्रद्धा तथा भक्ति थी। दातार होने के अतिरिक्त वे एक महा तपस्विनी भी थी। माणिकदेवी ने श्राविका के सब व्रतों को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप देकर अन्य श्राविकाओं के वास्ते एक आदर्श उपस्थित किया है। इसी कारण वे **आदर्श श्राविका** है। लक्ष्मी पुत्री होने पर भी गर्व तो उन्हें छू तक नहीं गया था। उन्होंने सदा दीनों की सेवासुश्रुषा की। स्वधर्मी बन्धुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए—इसकी शिक्षा हमें माणिकदेवी के जीवन से मिलती है। इन सब बातों पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सती-साध्वी माणिकदेवी का अनुकरणीय जीवन एक अखण्ड चिराग की जलती हुई ज्योति है, जिसका प्रकाश अंधेरे में भटकने वाली हमारी माताओं तथा बहिनों को सदा पथ प्रदर्शन करता रहेगा।

बंगाल गेजेटियर में माणिकचंद के विषय में लिखा है—

The importance of Manikchand may be realised from the fact that when in 1712, during the fight for succession, Azimus-shan declared himself emperor, Manikchand received a siropa and an elephant, and his nephew an elephant from the State, for their support. In the same year, when Farrukh Siyar en-throned himself at Patna and proceeded to compete for the Delhi throne, he took loan from Manikchand to finance his endeavours. Soon after his accession, Farrukh Siyar honoured Manikchand with the title of Nagar Seth (the city banker). Manik chand died

in 1714, but before his death the banking house was firmly established in Murshidabad. He was succeeded by his nephew Fatehchand. Fatehchand was adopted by him as a child and he has trained him up as a banker and clever diplomat.

फरुखशियर ने अपने शासन के तीसरे वर्ष में फरमान जारी करके मानिकचन्द को नगर सेठ का खिताब दिया। ये खिताब प्राप्त करके सारे भारत वर्ष में वह सेठ के नाम से प्रसिद्ध हो गये और नबाव के बाद उनका ही नाम लिया जाने लगा। उस समय पांव में सोना पहनने का अधिकार सिर्फ नबाव की बेगम को था। लेकिन बादशाह ने स्वयं सेठ मानिकचंद की पत्नी मानिकदेवी को सम्मान के प्रतीक के रूप में पांव में सोने का गहना भेंट दिया।

सेठ मानिकचंद की दो पत्नियां थी जिनका नाम मानिक देवी और सुहागदेवी था। लेकिन उनके कोई सन्तान नहीं होने के कारण उन्होंने अपनी बहन धनबाई जिनका विवाह आगरा निवासी राय उदय चंदजी गोखरू से हुआ था उनके तीसरे पुत्र फतेहचंद को गोद लिया था। सेठ मानिकचंद की मृत्यु १७१४ ई० में हुई। टक्साल के पास भागीरथी के किनारे दयाबाग में उनका अग्नि संस्कार किया गया। किसी-किसी किताब में मानिकबाग नाम लिखा है। आज ये किस जगह पर है इसकी जानकारी नहीं है। उसके बाद फतेहचंद उनके उत्तराधिकारी बने। उन्होंने न केवल अपने पूर्वजों की विरासत का संरक्षण किया वरन उसको और भी समृद्ध किया। उनके काल में जगत सेठ परिवार उत्थान के शिखर पर पहुँच गया था। वे बहुत ही कुशल तथा नीतिज्ञ थे। १७२३ ई० में मुर्शीदकुली खाँ की सिफारिश पर मुगल सम्राट फरुखशियर ने उन्हें जगत सेठ का खिताब दिया। अंग्रेजों के एक दस्तावेज के अनुसार मुर्शीदकुली खाँ ने जगत सेठ का खिताब दिलाने का अनुमोदन करने का पांच लाख रुपया लिया था।

"In 1723, Fatehchand got the title of Jagat Seth from the emperor on the recommendation of Murshid Quli. An English Company record says that Murshid Quli had 'Fleeced' five lakhs of rupees from Fatehchand in 1722, as a price for the conferment of the title. Jagat Seth became the most influential private person in Murshidabad."

West Bengal District Gagetteers.

फरुखशियर के बाद मोहम्मद शाह दिल्ली का बादशाह बना। उस समय मुगलसल्तनत की आर्थिक अवस्था बहुत ही डांवाडोल थी और राजनैतिक अस्थिरता बनी हुई थी। सेठ फतेहचंद के मशवरे से बादशाह ने कुछ आर्थिक सुधार किये जिससे आर्थिक अवस्था में काफी सुधार आया। इससे प्रसन्न होकर मोहम्मद शाह द्वारा भी उन्हें जगत सेठ की पद्वी से सम्मानित किया गया और उनके पुत्र आनन्दचंद को सेठ की पद्वी दी गयी।

मुर्शीदकुली खाँ के बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन बंगाल और उड़ीसा का नबाव बना। उसने अनेक इमारतें बनवायी तथा वह अपनी शान-शौकत और विलासिता पर खुलकर खर्च करता था जिसके कारण वह धन के लिये जगत सेठ, हाजी अहमद और आलमचंद पर पूर्णतया निर्भर था। इसलिये उसने जगत सेठ से अच्छे संबंध बनाये रखे। उसके समय में जगत सेठ और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच रुपये के लेनदेन के कारण गहरे मतभेद उत्पन्न हुए थे। कम्पनी जगत सेठ का रुपया हड़पना चाहती थी। लेकिन जगत सेठ फतेहचंद ने अपनी कुशलता और सूझबूझ के साथ कम्पनी से अपना रुपया अदायी कर लिया। जगत सेठ फतेहचंद का रुतबा इतना ज्यादा था कि उनकी सहायता के बिना या उनका विरोध करके कोई भी टिक नहीं सकता

था। कम्पनी के विरोध करने पर कम्पनी का व्यापार बन्द हो गया और वह समझौता करने पर मजबूर हो गये इस प्रकार जगत सेठ का रुपया कम्पनी को चुकाना पड़ा। अंग्रेज समझ गये थे कि हमें यदि यहाँ व्यापार करना है तो जगत सेठ की सहायता लेनी ही पड़ेगी। सन् १७३९ में शुजाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका बेटा सरफराज बंगाल का हाकिम बना। जो एक अत्यन्त विलासी, कामुक और कमजोर व्यक्ति था।

लगभग इसी समय ईरान के नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया और दिल्ली में लूटमार की। बंगाल की समृद्धि को देख उसकी नजरे बंगाल पर थी। उससे टक्कर लेने में सरफराज खान असमर्थ था। अतः इस संकट की घड़ी में बंगाल के छोटे बड़े सब जमींदार, राजा और नबाव आदि जगत सेठ के पास आये। जगत सेठ की महिमापुर की कोठी मंत्रणा गृह बन गयी थी। अन्त में जगत सेठ की सूझ-बूझ से उसकी टक्साल में ढले एक लाख सोने के सिक्के नादिरशाह को भेट किये गये जिससे वे प्रसन्न होकर लौट गया और बंगाल नादिरशाह के आतंक से बच गया।

महिमापुर की एक अत्यन्त सुन्दर कन्या से जगत सेठ के लड़के के पुत्र की शादी होने वाली थी जिस पर सरफराज खाँ मुग्ध हो गया और उसे अपने महल में भेजने के लिए जगत सेठ से कहा। जगत सेठ के आपत्ति जताने पर नवाब ने जबरन उस कन्या को अपने महल में बुलाया।

He (Fateh chand) had about this time married his youngest grandson named Seet Mohtab Roy to a young creature of exquisite beauty, aged about eleven years. The fame of her beauty coming to the ears of the Sarpharaj Khan he turned with curisity and lust for the possession of her, and sending for Jaggaut Seth demanded a sight for her.

Holwells Interesting Historical Events pt I Chapt II, p. 70.

मुस्लिम इतिहासकारों ने इस घटना पर पर्दा डालते हुए लिखा है कि मुर्शीदकुली खाँ की मृत्यु के समय जगत सेठ के पास एक करोड़ रुपया उसका जमा था। (कहीं-कहीं सात करोड़ का वर्णन है) सरफराज खाँ जगत सेठ को उस रुपये के लिये बराबर प्रताड़ित करता रहता था। इसीलिये नवाब को बदनाम करने के लिये यह षड़यन्त्र जगतसेठ ने किया जबकि ऐसा कहा जाता है कि उस समय जगत सेठ का प्रत्येक दिन का कारोबार एक करोड़ का था अतः जगत सेठ जैसे व्यक्ति के लिए एक करोड़ या सात करोड़ रुपये का कोई महत्व नहीं था। फतेहचंद बहुत ही दूरदर्शी, बुद्धिमान और धार्मिक व्यक्ति थे जो किसी का रुपया रखना तो दूर की बात जरूरत पड़ने पर हर किसी की सहायता के लिये तत्पर रहते थे। मुस्लिम इतिहासकार जो भी कहें लेकिन उस समय की यह घटना एक भीषण अपराध थी जो नबाव सरफराज ने किया था। सरफराज की विलासिता के कारण कोष पूरी तरह खाली हो गया था। तथा इस घटना से दिल्ली के बादशाह भी सरफराज से अप्रसन्न थे। उनकी सहमति से अलीवर्दी खाँ जो बिहार का हाकिम था उसने सरफराज पर आक्रमण कर दिया। गिरिया के युद्ध में सरफराज पराजित होकर मारा गया और अलीवर्दी खाँ बंगाल का नबाव बन गया। अलीवर्दी खाँ बहुत ही शांतिप्रिय और कुशल व्यक्ति था। उसके समय में सन् १७४१-४२ ई० में मराठों ने बंगाल पर हमला कर दिया। अलीवर्दी खाँ को कई बार मराठों से युद्ध करना पड़ा। मराठों से युद्ध करने के लिये धन की सहायता जगत सेठ द्वारा की जाती थी। जगत सेठ के साथ अपने अच्छे संबन्धों के कारण वह उनका बहुत सम्मान करता था। इसी लिये मराठों के आक्रमण के समय अलीवर्दी खाँ ने जगत सेठ को सुरक्षित स्थान में भेजकर अपने सेनापति मीरहबीब को मुर्शिदाबाद और जगत सेठ की कोठी की सुरक्षा के लिये भेजा। लेकिन मीरहबीब ने ईर्ष्यावश जगत सेठ की कोठी को मराठों द्वारा

लूटने दिया। करीब दो करोड़ रूपये की सम्पत्ति मराठों ने लूटी और कोठी तहस-नहस हो गई। एक वर्ष बाद पुनः मराठों ने हमला किया इस बार समझौते के बहाने अलीवर्दी खाँ ने भास्कर पंडित को बुलाया और अपनी तलवार से उसकी गर्दन काट दी।

जगत सेठ के पास इतनी सम्पत्ति थी कि मराठों द्वारा दो करोड़ लूटे जाने पर भी उनकी समृद्धि में कोई असर नहीं पड़ा। उनके कारोबार में लेन-देन हुंडियों द्वारा होता था। ये हुंडियां पचास लाख से एक करोड़ तक की दी जाती थी जो दर्शनी हुंडी कहलाती थी। बंगाल के सारे दिवानी और वित्तीय मामले जगत सेठ के अधिकार में थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जगत सेठ से लाखों रुपये कर्ज ले रखा था जिसका भुगतान वे चांदी बेचकर करते थे। एक तरह से वह अपने व्यापार के लिये जगत सेठ पर निर्भर रहते थे।

In 1732 when the English East India Company sent Rs. 1,50,000 to Patna, they borrowed the amount from the House of Jagat Seth. At Kasim Bazar, the servants or the Company borrowed Rs. 2,00,000 from the House. The Company was irritated but had to admit that if they were to trade in Bengal. Futteh Chand must be satisfied and the house must be kept in temper.

जगत सेठ फतेहचंद का महत्व मुर्शिदाबाद ही नहीं दिल्ली के राजनैतिक हलको में भी जबरदस्त था। यूरोपियन व्यापारिक कम्पनियाँ भी जब कोई काम दिल्ली सल्तनत या मुर्शिदाबाद के नबाव से कराना चाहती थी तो वह जगत सेठ के मार्फत ही कराती थी।

Fateh Chand's nearness to the political supremos in Delhi and Murshidabad gradually led to his involvement in the politics of the period. The European companies courted him for his word

carried great weight with the Nawab and the Mughal Emperor. Whenever they needed some favour from the Nawab or the Emperor, they routed their request through the House of Jagat Seth.

जगत सेठ के इतने प्रभावशाली होने के कारणों का आंकलन करते हुए एक लेखक ने लिखा है—

An author has graphically described the reasons for the tremendous influence wielded by the House of Jagat Seth. "The major sources of the huge income, tremendous power and great prestige of the house of Jagat Seth were derived from their farms of Murshidabad and Dacca mints, two-thirds of the province's revenue collection, their control over rates of exchange, interest rates, bill-broking and the provision of credit'.

The economic importance of the House received impetus when it was called upon to remit the annual tribute of the Subah to Delhi.

The existence of branches of the House in all the important trade centres in eastern, northern and western India, enabled the House to carry on the work of transmission of money through *hundis*. This was a very important segment of their activities. A contemporary author noted that a *darshani hundi* between rupees fifty lakhs and one crore could be drawn in the time of Seth Fateh Chand. The prosperity of the House was so well established that even when the Marathas in 1742 looted Rupees two crores from the House of Jagat Seth, its liquidity

was not impaired. In 1747 the Chief of the Dacca Factory of the English East India Company received Rs. one lakh by means of a *hundi* sent from Kasimbazar and discounted by the House of Jagat Seth.

फतेहचंद के बड़े पुत्र का नाम आनंदचंद था जिनका स्वर्गवास पिता से पहले ही हो जाने के कारण फतेहचंद के बाद उनका पौत्र महताबचंद गद्दी पर बैठा। उस समय दिल्ली का बादशाह अहमदशाह था। उसने महताबचंद को जगत सेठ और उनके भाई स्वरूपचंद को महाराजा का खिताब दिया। जैन तीर्थ सम्मेतशिखर का स्वामित्व भी इन दोनों भाईयों को दिया गया।

"पारसनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'जगत सेठ' में लिखा है कि अठारहवीं शताब्दी में जिस उथल-पुथल ने अंग्रेज जाति को बंगाल का अधीश्वर बना दिया था, उसके इतिहास से मुर्शिदाबाद के जगत सेठ का नाम विशेष रूप से सम्बद्ध है। मुर्शिदाबाद से दिल्ली तक जगत सेठ परिवार की ऐसी धाक जमने का कारण था, उसका सारे तख्त का एक जबरदस्त पाया होना। प्रथम जगत सेठ फतेहचन्द ने जो मान महत्व पाया था, वह साधन सम्पन्नता के साथ अपनी राजसेवाओं के बल पर। इन सेवाओं में एक यह था कि मुगल साम्राज्य पर विपत्ति वर्षा होने के समय वह दिल्ली के लाल किले में करोड़ सवा करोड़ का भुगतान हुण्डी के जरिये ही करा सकते थे। जगतसेठ सरकार का एक अभिन्न अंग बन गया था और संयुक्त होकर दोनों एक दूसरे के हानि-लाभ में अपना हानि-लाभ समझने लगे थे।"

"Their riches were so great, that no such bankers were ever seen in Hindustan or Deccan; nor was there any banker or merchant that could stand a comparison with them, all over In-

dia. It is even certain that all the bankers of their time in Bengal, were either their factors, or some of their family. Their wealth may be guessed by this only fact. In the first invasion of the Marhattas, and when Moorshoodabad was not yet surrounded by walls, Mir-habib, with a party of their best hourse, having found means to fall upon that city, before Aly-verdy khan could come up, carried from Jagat Sett's house two crores of rupees in Arcot coin only ; and this religious sum did not affect the two brothers, more than if it had been two trusses of straw. They continued to give afterwards to Government, as they had done before, bill of exchange, called darshani hundies, of one crore at a time, by which words is meant, a draft, which the acceptor is to pay at sight, without any sort of excuse. In short, their wealth was such that there is no mentioning it without seeming to exaggerate, and to deal in extravagant fables. Thousands of their agents and factors have acquired such fortunes in their service, as have enabled them to purchase large tracts of land, and other astonishing possessions."

Seir Mutaqherin, Trans. Vol, II, pp. 226-227.

सन् १७५६ ई० में अस्सी वर्ष की उम्र में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हुई उसके बाद उनकी पुत्री अमीना बेगम का पुत्र सिराजुद्दौला बंगाल, बिहार और उड़ीसा का नबाव बना। सिराजुद्दौला और अलीवर्दी खाँ के सम्बन्ध के विषय में १७७८ में Robert Ormey ने लिखा है– "Mirza Mahmud Siraj, a youth of seventeen years, had discovered the most vicous propensities, at an age when only follies are ex-

pected from princes. But the great affection which Allaverdy [Ali Vardi] had borne to the father was transferred to this son, whom he had for some years bred in his own palace; where instead of correcting the evil dispositions of his nature, he suffered them to increase by overweening indulgence: born without compassion, it was one of the amusements of Mirza Mahmud's childhood to torture birds and animals; and, taught by his minions to regard himself as of a superior order of being, his natural cruelty, hardened by habit, rendered him as insensible to the sufferings of his own species as of the brute creation [animals]: in conception he was not slow, but absurd; obstinate, sullen, and impatient of contradiction; but notwithstanding this insolent contempt of mankind, innate cowardice, the confusion of his ideas rendered him suspicious of all those who approached him, excepting his favourites, who were buffoons and profligate men, raised from menial servants to be his companions: with these he lived in every kind of intemperance and debauchery, and more especially in drinking spiritous liquors to an excess, which inflamed his passions and impaired the little understanding with which he was born. He had, however, cunning enough to carry himself with much demureness in the presence of Allaverdy, whom no one ventured to inform of his real character; for in despotic states the sovereign is always the last to hear what it concerns him most to know."

कनिष्क द्वारा लिखी गयी 'जगतसेठ' किताब में स्पष्ट लिखा है कि अलीवर्दी खाँ के समय नबावी सेना ने वेतन नहीं मिलने पर जब

लड़ने से इन्कार कर दिया था, तब जगत सेठ ने धन द्वारा नबाव की सहायता की, जो धन जगत सेठ नबाव को सेना के लिये देते थे उससे वह स्वयं अपनी एक बड़ी फौज सुरक्षा के लिये रख सकते थे लेकिन नबाव के प्रति अपनी वफादारी निभाते हुए उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया। अलीवर्दी खाँ भी जगत सेठ का बहुत मान करता था और उनकी सुरक्षा का दायित्व भी उसने बखूबी निभाया।

अलीवर्दी खाँ ने अपनी मृत्यु के पूर्व सिराज को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हुए उसे जगत सेठ की सलाह अनुसार चलने का परामर्श दिया था। लेकिन सिराजुद्दौला अत्यन्त अस्थिर बुद्धि और चंचल स्वभाव का था। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और कैसा नहीं इसका उसे ज्ञान नहीं था। उसके आचरण से सभी दरबारी असन्तुष्ट थे।

"Making no distinction between wise and virtue, he carried defilement wherever he went, and, like a man alienated in his mind, he made the house of men and women of distinction the scenes of his depravity, without minding either rank or station. In a little time he became detested as Pharaoh, and people on meeting him by chance used to say, 'God save us from him!"

अलीवर्दी खाँ की बड़ी लड़की घसीटी बेगम सिराज को नबाव नहीं बनाना चाहती थी। वो निःसन्तान विधवा थी। उनके पास अपार सम्पत्ति थी जिससे उन्होंने अपने लिये गौढ़ के प्राचीन अवशेषों से मिले काले संगमरमर के खम्भों का महल बनवाया था। इस महल के चारों तरफ मोती झील बनवायी थी। गद्दी पर बैठते ही सिराज के सामने दो प्रमुख समस्याएँ थी। प्रथम अंग्रेजों की बढ़ती महत्वाकांक्षा को रोकना और द्वितीय अपने विरोधी रिश्तेदारों से बदला लेना। गद्दी पर बैठने के बाद उसने सेना भेजकर घसीटी बेगम की सम्पत्ति कब्जे में कर ली और

उनसे अशोभनीय व्यवहार किया। उसने सेनाध्यक्ष मीरजाफर की शक्तियों में भी कटौती कर दी।

The young nawab faced a two pronged problem: the increasing ambitions of the British and the conspiracy of his disgruntled realatives who were allied with the bureaucrats. He tried to encounter these by first relieving his maternal aunt, **Begum Ghasiti,** (a scheming and intriguing person) of her wealth and slashing the powers of Mir-Jafar, the Commander-in-Chief (Bakshi) of the royal army.

मुताखरीन के अनुसार नवाब सिराज सेठ महताब चंद के साथ बहुत ही अशोभनीय व्यवहार करता था और उनकी सलाह को महत्वहीन समझकर अवहेलना करता था। बात-बात में महताब चंद को जबरन मुसलमान बनाने का भय भी दिखाता था।

उसके चरित्र के बारे में मुस्लिम इतिहासकार गुलाम हुसैन सलीम ने लिखा है–

"Owing to Siraj ud Dowla's harshness of temper and indulgence, fear and terror had settled on the hearts of everyone to such an extent that no one among his generals of the army or the noblemen of the city was free from anxiety. Amongst his officers, whoever went to wait on Siraj ud Dowla despaired of life and honour, and whoever returned without being disgraced and ill-treated offered thanks to God. Siraj ud Dowla treated all the noblemen and generals of Mahabat Jang [Ali Vardi Khan] with ridicule and drollery, and bestowed on each some contemptuous nickname that ill-suited any of them. And whatever

harsh expressions and abusive epithet came to his lips, Siraj ud Dowla uttered them unhesitatingly in the face of everyone, and no one had the boldness to breath freely in his presence."

बंगाल में जो भी नया नबाव बनता दिल्ली बादशाह द्वारा उसकी स्वीकृत सनद के रूप में दी जाती थी और यह सनद जगत सेठ के द्वारा भेजी जाती थी। राजनैतिक अस्थिरता के कारण सनद आने में देरी होने से पूर्निया के नबाव सौकत जंग और सय्यद अहमद ने दिल्ली के बादशाह के प्रधानमंत्री को अपने पक्ष में करके बंगाल का नबाव बनने के लिये विद्रोह कर दिया। सिराज ने मोहनलाल और मीरजाफर को उनका विद्रोह दमन करने के लिये भेजा। इस युद्ध के लिये व्यापारी वर्ग से तीन करोड़ रुपया संग्रह करने का आदेश जगत सेठ को दिया। इन लोगों पर जबर्दस्ती उत्पीड़न कर वसूली करना असंगत समझकर जगत सेठ ने इस आदेश का प्रतिवाद किया। फलस्वरूप नबाव ने जगत सेठ के मुख पर घूसे का प्रहार किया और बन्दी बनाने का आदेश दिया। इस प्रकार दिल्ली का बादशाह जिस जगत सेठ का वंशानुक्रम से सम्मान करता आ रहा था उनका भी अपमान सिराजुद्दौला ने किया। बाद में मीरजाफर द्वारा जगत सेठ को छुड़ाया गया। (यद्यपि भारतीय इतिहासकारों ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है लेकिन निखिलनाथ राय की मुर्शिदाबाद की कहानी में इसका वर्णन मिलता है।)

ऐतिहासिक वर्णनों के अनुसार सिराजुद्दौला स्वेच्छाचारी और अत्यन्त विलासी था। उसने कई खून करवाये। महिमापुर के ही सद्गृहस्थ मोहनलाल की बहन को, जो सारे बंगाल में सर्वाधिक सुन्दर मानी जाती थी, अपने अन्तःपुर में दाखिल कर लिया। रानी भवानी की विधवा पुत्री तारा को अंकशायिनी बनाने के लिये षड़यंत्र रचा तो वह अग्नि में जलकर भस्म हो गयी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि सिराजुद्दौला ने जगत सेठ खानदान की अस्मत पर भी डाका ड़ाला था। '**प्लासी युद्ध**'

नामक ग्रन्थ में सिराज की इस बदचलनी को चित्रित किया गया है। प्रजा में असन्तोष बढ़ने लगा। इधर अंग्रेजों के साथ भी शत्रुता बढ़ने लगी। जगत सेठ अंग्रेजों से शत्रुता मोल लेने के पक्ष में नहीं थे। वे जानते थे कि नबाव की सेना व्यवस्थित नहीं है तथा अधिकारी वर्ग भी सिराज से नाराज है किन्तु सिराजुद्दौला ने एक न सुनी। अंग्रेज तब तक कलकत्ता में पाँव जमा चुके थे तथा फोर्ट विलियम में किलेबन्दी कर चुके थे।

अलीवर्दी खाँ के समय जो सभासद नबाव के वफादार थे वे सब सिराज के विरुद्ध हो गये। २४ मई १७५६ में सिराज ने अंग्रेजों की काशिमबाजार की फैक्ट्री में कब्जा कर लिया। जून में कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। जो अंग्रेजों का गढ़ था। इसके बाद वे पूर्णियां में शौकत जंग के विद्रोह को दबाने में लग गया। इससे फायदा उठाकर अंग्रेजों ने पुनः कलकत्ता को जीत लिया और मीरजाफर से गुप्त सन्धि कर ली। अन्त में राबर्ट क्लाइब के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने २३ जून १७५७ ई० में सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हरा दिया। सिराजुद्दौला मारा गया और मीरजाफर गद्दी पर बैठा। इन सारे घटनाक्रम में बार-बार सिराजुद्दौला द्वारा अपमानित होने के बावजूद भी जगत सेठ ने प्रत्यक्षरूप में नबाव का विरोध नहीं किया और न ही अंग्रेजों का साथ दिया। यहाँ तक कि सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच वह सन्धि का सेतु भी बने रहे क्योंकि वह जानते थे दोनों में से किसी का भी साथ देना एक तरफ खाई और दूसरी तरफ कुएं के समान था।

On the 24th May 1756 AD **Siraj** occupied the **Cossimbazar** factory of the British. He went on to occupy Calcutta in June 1756 AD. Next he went to **Purnea,** Bihar to quell the rebellion of his cousin **Shaukat Jang,** also a contes-

tant for the throne. Taking advantage of this turbulent situation, the British re-conquered Calcutta in February 1757 AD and struck a secret deal with **Mir-Jafar.** When the British captured the French factory at **Chandernagore,** the French sought help from Siraj. The final showdown between Siraj-u-Daula and the British army, commanded by **Robert Clive,** took place at the fields of Plassey, a tiny village, located midway between Calcutta and Murshidabad. Owing to an act of gross betrayal by Mir Jafar, Siraj was defeated on 23rd June 1757 AD, and subsequently killed. Mir-Jafar ascended the throne of Bengal.

अंग्रेज मीरजाफर को नबाव बनाना चाहते थे। लेकिन जगत सेठ इसके लिये राजी नहीं थे। फिर भी उन्होंने इसका विरोध नहीं किया क्योंकि मीरजाफर ने उन्हें सिराजुद्दौला की कैद से छुड़ाया था। कुछ इतिहासकार जगत सेठ को भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के लिये दोषी मानते है जबकि वास्तविकता यह थी कि दिल्ली की मुगलसल्तनत पूरी तरह कमजोर हो गयी थी। अब तक मुगलसल्तनत के अधिकार में सबसे समृद्धशाली सूबा बंगाल का था जिसका कारण जगत सेठ के अधिकार क्षेत्र में यहाँ के सारे आर्थिक और वित्तीय प्रशासन थे। लेकिन सन् १७६५ ई० में शाहआलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को सौप दी उसके बाद से बंगाल का पतन होने लगा। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का प्रमुख कारण मुगलसल्तनत का कमजोर होना और सिराजुद्दौला की अदूरदर्शितापूर्ण नीतियां जिसके कारण बंगाल का पतन हुआ और अंग्रेजी साम्राज्य की नींव दृढ़ होने लगी।

सिराजुद्दौला के बाद मीरजाफर नबाव बना जो अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली था। अंग्रेज कर वसूली करने लगे जिससे कोष खाली हो

गया। यद्यपि यह कहा जाता है कि मीरजाफर ने अंग्रेजों को कलकत्ता में टक्साल खोलने की भी इजाजत दे दी। जिसके कारण कम्पनी के पांव और भी मजबूत हो गये लेकिन कम्पनी ने प्रथम ही ये इजाजत सिराजुद्दौला से संधि कर ले ली थी। अंग्रेजों के साथ पहले युद्ध में सिराज ने वापिस लौटते समय कम्पनी से एक संधि की थी जिसके तहत कलकत्ता में टक्साल खोलने की मंजूरी दी और दूसरे कलकत्ता के पास के ८० ग्राम जिनको मुर्शीदकुलीखाँ ने अंग्रेजों को लेने नहीं दिया था उनको भी खरीदने का अधिकार सिराज ने अंग्रेजों को दे दिया। संधि की तीसरी शर्त के अनुसार अंग्रेजों के शत्रु उसके शत्रु होगें और अंग्रेजों के मित्र नबाव के मित्र होगें। यह संधि जगत सेठ के लिये बहुत ही हानिप्रद सिद्ध हुई।

সন্ধির সর্ত পাঠানো হবে। রঞ্জিত রায় যত গুলো লিখেছিল তার চেয়ে আরো বেশী সর্ত ঢুকে গেল। মুর্শিদকুলি কলকাতার আশপাশের আশীখানা গ্রাম কিনতে দেয়নি। এবারে সেই আশীখানা গ্রাম দিতে হবে। যারা ইংরেজের শত্রু তারাই হবে নবাবের শত্রু। কলকাতার ট্যাঁকশালের টাকার ওপর কোন বাট্টা নেওয়া চলবে না। সিরাজ তাতেই রাজী।

কলকাতার সন্ধি ধাক্কা দেয়নি শুধুমাত্র সিরাজকে। সিরাজের অপমান সিরাজ নিজে ডেকে এনেছে। কিন্তু কলকাতার সন্ধিপত্র ধাক্কা দিয়েছে মহিমাপুরকে। ট্যাঁকশালের চেষ্টা বহুদিন থেকে করে আসছে ইংরেজরা। তাদের কোন চেষ্টা শেঠদের অজানিত নয়।

जब फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों से पराजित होकर भागकर नबाव के पास गये तब नबाव ने उन्हें पनाह देकर संधि की शर्तों को तोड़ दिया। लॉर्ड क्लाईब के बार-बार सचेत करने पर भी नबाव सिराजुद्दौला ने नहीं सुना जिसका परिणाम नबाव की पराजय और उसकी मौत में

हुआ। उसके बाद मीरजाफर नबाव बना लेकिन वह जब अयोग्य सिद्ध हुआ तब उसके स्थान पर मीरकासिम को बंगाल का नबाव बनाया गया। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। जगत सेठ के प्रभाव से डरकर और अंग्रेजों से जगत सेठ के अच्छे सम्बन्ध होने के कारण उसने जगत सेठ महताब राय और उनके भाई स्वरूप चंद को कैद कर लिया। अंग्रेजों से युद्ध हार जाने के बाद भागते हुए मीरकासिम ने जगत सेठ को गंगा में डुबो देने का आदेश दिया। इस तरह जगत सेठ महताब राय और उनके भाई स्वरूप चंद का दुःखद अंत हुआ। जगत सेठ की हत्या के बाद उनके स्वामी भक्त नौकर चुन्नी ने भी नदी में कूदकर आत्म हत्या कर ली।

जगत सेठ महताब राय की मृत्यु के बाद उनके पुत्र खुशालचंद उत्तराधिकारी बने। दिल्ली के बादशाह शाहआलम ने उन्हें भी जगत सेठ की उपाधि से सम्मानित किया। मीरकासिम के भाग जाने के बाद पुनः मीरजाफर बंगाल का नबाव बना और अंग्रेजों ने उससे लाखों रूपये हरजाने के तौर पर लिये। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र नजीबुद्दौला नबाव बना। उसके समय कम्पनी और नबाव के बीच समझौता हुआ जिसमें अंग्रेजों को सेना रखने और धन वसूलने का अधिकार प्राप्त हो गया। अंग्रेजों ने दिल्ली के बादशाह को छत्तीस लाख रूपया सलाना देने के एवज में राज्य की दीवानी का अधिकार प्राप्त कर लिया। जगत सेठ का लाखों रूपया जो कम्पनी ने कर्ज के रूप में लिया था वो भी नहीं दिया। राज्य के व्यापार पर कंपनी ने अपना एकाधिकार बना लिया। सारा मुनाफा इंग्लैण्ड जाने लगा। अंग्रेजों द्वारा ऋण न चुकाने के कारण जगत सेठ और अंग्रेजों के बीच मतभेद बढ़ने लगे परिणाम स्वरूप मुर्शिदाबाद की पुरानी टक्साल बंद कर दी गयी। अतः मुद्रा पर भी अंग्रेजों का एकाधिपत्य हो गया। इन सबके बावजूद

जगत सेठ खुशालचंद अपने खानदान की दान प्रवृत्ति की परम्परा का निर्वाहन मुक्त हाथ से करते रहे। उस समय जगत सेठ के परिवार का मासिक खर्च एक लाख रूपया था। उनके परिवार में प्रायः चार हजार व्यक्ति थे। जिनमें बारह सौ स्त्रियाँ थी। सेठ खुशालचंद बहुत ही शांत और धार्मिक प्रकृति के थे। उन्होंने १०८ सरोवरों का निर्माण कराया तथा अनेक जैन मंदिर बनवाये। जगत सेठ खुशालचंद की चालीस वर्ष की अल्पायु में मृत्यु होने पर परिवार की स्थिति बिगड़ती गयी क्योंकि ऐसा माना जाता है कि उनकी अचानक मृत्यु हो जाने से जो गुप्त सम्पत्ति जमीन के अन्दर थी उसके बारे में वह किसी को बता नहीं सके। सेठ खुशालचंद के पुत्र गोकुलचंद की मृत्यु पिता की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व ही हो गयी थी। अतः उन्होंने अपने भतीजे हरखचंद को गोद ले लिया और वे ही उनके उत्तराधिकारी हुए। अंग्रेजों की सिफारिश पर नबाव मुबारकउद्दौला ने सेठ हरखचंद को जगत सेठ की पद्वी दी। वे पुत्र न होने से बड़े व्यग्र रहते थे। एक वैष्णव फकीर के प्रभाव में जगत सेठ ने वैष्णव धर्म का एक मंदिर बनवाया। लेकिन परिवार के अन्य लोग तथा महिलाएँ जैन धर्म के प्रति आस्थाशील बने रहे। जगत सेठ ने वारेनहेस्टिंग के जाने से पहले टक्साल को खुलवाने का आवेदन पत्र अंग्रेजों को दिया लेकिन अनुमति नहीं मिली। पुनः मुर्शिदाबाद में टक्साल खोलने की अनुमति मांगी गयी लेकिन कम्पनी ने मंजूर नहीं किया क्योंकि इससे कम्पनी का वर्चस्व खतम हो सकता था।

मुखातरीन के अंग्रेजी अनुवादक ने पूर्वापर की तुलना करते हुए लिखा था कि फतेहचंद के समय में जगत सेठ के लिए, दो करोड़ लूट जाने पर भी, सरकार को पचास लाख से एक करोड़ तक की दर्शनी हुंडी देते जाना साधारण बात थी। आज कल के जगत सेठ १७८७ में १४०,००० की हुंडी का भी भुगतान कर सके हैं तो कई किस्तों में ही।

अपने धन का अधिकांश या तो खुशालचंद स्वयं लुटा चुके थे या उनके मरने पर वह जहां तहां डूब चुका था। उनके परिवार में किंवदन्ती यह चली आई है कि जो निधि गड़ी हुई थी उसका वह सहसा मर जाने के कारण किसी को पता न बता सके थे। अपने चाचा गुलाबचंद से विरासत में कुछ धन पाकर ही हरखचंद अपने नाम की थोड़ी लाज रख सके थे।

जगत सेठ–पारसनाथ सिंह

जगत सेठ हरखचंद के दो पुत्र हुए। इन्द्रचंद और विष्णुचंद। हरखचंद के बाद इन्द्रचंद जगत सेठ बने। २७ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हो जाने पर इनके पुत्र गोविन्दचंद ने पिता की विरासत को संभाला। लेकिन कंपनी ने गोविन्दचंद को जगत सेठ स्वीकार नहीं किया। कुछ लेखकों का मानना है कि कंपनी ने उन्हें जगत सेठ की मान्यता दी थी। गोविन्दचंद अपने घर के पुराने जेवर बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे। सन् १८४३ ई० में कम्पनी ने उन्हें १२०० रूपये की मासिक वृत्ति देना स्वीकार किया। गोविन्दचंद के कोई पुत्र न होने के कारण उन्होंने गोपालचंद को गोद लिया। गोपालचंद और विशनचंद के पुत्र किशनचंद दोनों ने मासिक वृत्ति के लिये कंपनी से आवेदन किया। गोविन्दचंद की मृत्यु के बाद गोपालचंद के समय कंपनी की तरफ से यह मासिक वृत्ति ७०० रुपये कर गयी तथा किशनचंद को ५०० रुपये देना निश्चित किया गया। किशनचंद द्वारा पुनः कंपनी को आवेदन दिया गया तब कंपनी ने किशनचंद को ८०० और गोपालचंद को ३०० रुपये देने की बात कहीं। जिसे गोपालचंद ने अस्वीकार कर दिया। किशनचंद की मृत्यु के बाद गोपालचंद की पत्नी सेठानी प्राणकुमारी बीबी को कंपनी की तरफ से ३०० रुपये की मासिक वृत्ति दी जाने लगी। सेठानी प्राणकुमारी बीबी द्वारा गोलापचंद को गोद लिया गया। इन्हीं गोलापचंद के बड़े पुत्र फतेहचंद तथा छोटे पुत्र

उदयचंद के समय में कसौटी पत्थर का मन्दिर जो भागीरथी के कटाव के कारण गंगा में विलीन हो गया था उसको भग्नावेशों सहित महिमापुर के नवनिर्मित घर में पुनः प्रतिष्ठित किया गया। १८९६ ई० के भयानक भूकम्प में सेठ मानिकचंद द्वारा बनाया महिमापुर का प्रसाद ध्वंस हो गया। अतः उससे कुछ दूर पर ही नवनिर्मित घर बनाया गया जिसमें फतेहचंद और उदयचंद रहते थे। लगभग इसी समय में गर्वनर जनरल लार्ड कर्जन मुर्शिदाबाद गया था। वहाँ उसने महिमापुर के खण्डहर देखे और वहाँ पर सेठ परिवार को मुगल बादशाहों से मिले हुए फरमानों और जेवरों के अलावा, पंद्रहवीं शताब्दी के बाद के कुछ दुष्प्राप्य सिक्के देखने का भी अवसर मिला। जिस फरमान के द्वारा फर्रुखसियर ने फतेहचंद को 'जगत सेठ' की उपाधि दी थी उसे गुलाबचंद ने कलकत्ते की 'विक्टोरिया मेमोरियल' नामक संस्था को समर्पित कर दिया। जगत सेठ फतेहचंद की मृत्यु १९५८ ई० में हुई थी। उनके पुत्र सौभागचंद थे जिनकी डकैतों द्वारा हत्या कर दी गयी थी। उनके दो पुत्र सेठ ज्ञानचंद और सेठ विजयचंद वर्तमान में हैं।

महिमापुर का कसौटी मन्दिर :

इतिहास प्रसिद्ध जगत सेठ परिवार द्वारा निर्मित मुर्शिदाबाद-महिमापुर कसौटी पत्थर के जिनालय एक तीर्थ स्थान बन गया था। सेठ हीरानन्द शाह जो नागोर से आगरा, पटना आदि स्थानों पर व्यापार के लिये आये उनके तथा उनके वंशजो का दबदबा मुगल दरबार, मुर्शिदाबाद के नबावों में एवं अंग्रेजों पर बना रहा। इनकी शान और शौकत किसी राजा बादशाह से कम नहीं थी। समूचे देश में उनकी अनेक कोठियां थी। धार्मिक क्षेत्र में भी उनके विशद् क्रिया-कलाप थे। सम्मेद शिखर तीर्थ के विकास में भी उनका बड़ा योगदान रहा। साधारण प्रजा से लेकर राजा महाराज तथा दिल्ली के बादशाह भी उनका सम्मान करते

थे। धीरे-धीरे कालान्तर में जब इस परिवार का पतन होने लगा और अंग्रेजों द्वारा उन्हें धोखा दिया गया तथा भागीरथी के कटाव के कारण करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ, दुर्लभ कसौटी निर्मित गंगा के तट पर बना जिनालय भग्न हो गया। तब सेठ उदयचंद ने भगवान की प्रतिमाओं को अपने महिमापुर की कोठी में लाकर नव जिनालय का निर्माण कर पुराने मंदिर के भग्नावेशों को यथा स्थान लगाया। जिस तरह बंगाल से जैनी लोगों को जब पलायन करना पड़ा था तो वे अपने साथ प्राचीन मूर्तियाँ आदि ले गये और राजस्थान में जगह-जगह प्रस्थापित कर दी। इसी प्रकार जब जगत सेठ परिवार मंदिर की देखभाल में भी अक्षम हो गया तो वर्तमान में परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्रीपद्मसागर सूरिश्वर महाराज साहब की प्रेरणा से अहमदाबाद के श्रेष्ठी वर्य श्री मुकेश भाई शाह ने इस मंदिर को गाँधी नगर के बौरिज में ले जाकर आचार्य प्रवर श्री पद्मसागर सूरिश्वरजी महाराज की निश्रा में पुनः प्रतिष्ठित किया। आज महिमापुर का जगत सेठ के कसौटी पत्थर का यह जिनालय गुजरात के गाँधीनगर के विश्वमैंत्री धाम, बौरिज में अपने अतीत के इतिहास को संजोए हुए सभी को आमंत्रित कर रहा है।

कसौटी मन्दिर की प्रशस्ति :

दानेयेंन तिरस्कृतः सुरतरु धैयेंण वारानिधि
लब्धं वंश विभूषकं च जगतः श्रेष्ठीतिरभ्यं पदम्
हीरानंद इति प्रभूत विभवः श्रेष्ठी गुणै भूषितो
लोकानां सुखदे जिनैर्निगदितं धर्मेरतः सोऽमवत्।।१
माणिक्यचंद्र श्रेष्ठी तस्य सुतो गुणि गणैः सुपूज्योऽभूत।
तस्य च रुचिरः सूनुः श्रीमान् फतेचन्द्रः जगतः श्रेष्ठी पदं।।२
तस्मात् कला कलापै रानन्द्यानन्दचन्द्र नामढ्यः
तस्मादपिच सुपुत्रो जातो महतावरायश्च।।३

तस्मात् खुशालचन्द्रो भूद् हर्षचन्द्रस्तदंगजः
तदात्मजश्चेन्द्रचन्द्रो धर्म कर्म परायणः।।४
गोविन्दचन्द्रः प्रवभूव तस्मा जातोऽंग भूस्तस्य गुलाबचन्द्रः
श्रुतप्रियः प्रीतिकरो जनाना जगतः श्रेष्ठीति शब्दः प्रतिवंश मासीत्।।५
प्रभुदित पतिकर लालित देहा कुलजनसुखकर वाचि प्रवीणा।
पर भूत रवजिति फूलकुमारी बुध गण रति कृति तस्य प्रियाभूत।।६
तस्या फतेचन्द्र सुतः कनिष्ठ स्तस्यानुज जगतः श्रेष्ठीवरो हि जातः।
स्निग्धः सुकीर्त्योदयचन्द्र संज्ञ स्ताभ्यांच सा शीलवती गुणज्ञा।।७
निकष प्रस्तर निर्मित मन्दिर सुरनदीस्य भग्न मवेक्ष्य तत्।
शुभकरी प्रतिमां गृहमानयद् नवनिकेतन वास विधित्सया।।८
शुभद् माधव मासि सिते दले सु शर सप्त नवेन्दु (१९७५) मितेऽब्दके।
विधु युतोत्तरफाल्गुनि कर्कटे यम तिथौ जिन पार्श्व प्रतिष्ठितम्।।९
भुवन संसृति दुःख विमोचिनी निज विधापित नूतन मन्दिरे।
व्यतनुत प्रथिते महिमापुरे रुचिकरे च मुनीन्द्र सुसंकुले।।१०

दान में कल्पवृक्ष को भी मात करने वाले, धैर्य में समुद्रोपम गैलडा वंश भूषण जगत सेठ पदधारक जैनधर्म परायण, लोगों को सुख देने वाले वैभवशाली गुणवान हीरानंद सेठ हुए, उनके सुपुत्र गुणीजनों से मान्य सेठ माणिकचंद हुए जिनके पुत्र जगतसेठ पदधारक सेठ फतहचन्द हुए। उनके सुपुत्र आनंदचन्द और तत्पुत्र महताबराय हुए। उनके पुत्र खुशालचन्द्र और उनके अंगज हर्षचन्द्र और उनके आत्मज इन्द्रचन्द्र धर्म कर्म परायण हुए। जिनके पुत्र गोविन्दचन्द के अंगज श्रुतप्रिय और जनता के प्रीति-पात्र जगत सेठ गुलाबचन्द हुए। उनकी प्रिया फूलकुमारी कुल में सुखदायिनी हुई। उनके पुत्र फतेचन्द्र और कनिष्ट अनुज कीर्तिशाली उदयचन्द्र हुए। उन्होंने और उनकी गुणवान शीलवती (भार्या) ने कसौटी पाषाण निर्मित मन्दिर को भागीरथी-गंगा द्वारा भग्न देखकर शुभकारक प्रतिमाओं की उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के

दिन अपने घर नव निकेतन में लाये। सं० १९७५ वैशाख सुदि तिथि और संसार के दुखों से छुटकारा दिलाने वाले स्वनिर्मापित नूतन मन्दिर में सुरुचिकर आचार्य महाराज से पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिष्ठा कराई।

स्वर्गीय भंवरलालजी नाहटा

जब किसी भी राष्ट्र का विभाजन होता है या सीमाएं परिवर्तित होती है तो अपना क्षेत्र पराया हो जाता है और पराया क्षेत्र अपना। सन् १९४७ ई. के विभाजन के बाद बंग क्षेत्र की सीमाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पूर्व बंग पाकिस्तान में चला गया और पश्चिमी बंगाल हिन्दुस्तान में रहा। जिसमें बिहार के कुछ क्षेत्र भी समाहित किये गये। अति प्राचीन तीर्थ स्थल सम्मेत शिखर जिसे बीस तीर्थकरों की निर्वाण भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है बहुत ही पवित्र क्षेत्र माना गया है। इसके पार्श्ववर्ती अंचलों में बहने वाली नदियाँ दामोदर, कंसावती, शिलावती, बराकर और अजय नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में जैन संस्कृति के प्राचीनतम निदर्शन इस क्षेत्र में जैन धर्म के प्रभाव के साक्ष्यरूप में आज भी वर्तमान है। आचारंग सूत्र से यह जाना जाता है कि आज से २६०० वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने अंग, बंग और राढ भूमि के विभिन्न जगहों पर विचरण किया था। उनके उपदेशों का प्रभाव आज भी इन क्षेत्रों में देखने को मिलता है। डॉ. प्रबोधचन्द बागची के अनुसार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में जैन धर्म बंग देश में सुप्रतिष्ठित था जो सातवीं शताब्दी के मध्य तक अनवरत रूप से चलता रहा।

७वीं शताब्दी के बाद से क्रमशः श्रावकों को बंगदेश से पलायन करना पड़ा। राजस्थान और गुजरात की तरफ जो भूमि कभी श्रमण संस्कृति की महक से सुवाकित थी, शनै-शनै उसका ह्रास होने लगा। शताब्दियों बाद पुनः राजस्थान से श्रावको का आगमन यहाँ पर हुआ। १७वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जगतसेठ के बंगदेश में पदार्पण के

बाद और भी अनेक श्रावक गण कासिमबाजार, अजीमगंज, जियागंज, बालूचर, महिमापुर में आकर बसे। जो भूमि कभी जिनेश्वरों के चरणरज से पवित्र हुई थी, जहाँ प्राचीन तीर्थस्थान डीही जिनेश्वर था जिसे आज अजीमगंज के नाम से जाना जाता है। वहीं पर इन श्रावकों ने मंदिरों और उपाश्रयों का निर्माण कर एक तीर्थ स्थान के रूप में स्थापित किया। इस तीर्थ स्थान में १८वीं शताब्दी से पुनः यति और मुनियों का आगमन होने लगा जिनका यहाँ के समाज पर विशेष धार्मिक प्रभाव पड़ा। १८वीं शताब्दी के अन्त में यति नेहाल कवि ने प्रथम जगतसेठ फतेहचंद की माताश्री माणकदेवी का चरित्रमय रास की रचना की। श्री ज्ञानसार महाराज जी की काव्य रचना में बंग देश का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। अकबर प्रतिबोधक, हीरविजय सूरिजी के शिष्य उपाध्याय सोमविजयजी तथा उनके शिष्य परंपरा में आगे चलकर ऋद्धि विजयजी के शिष्य चेतन विजयजी थे जिनका जन्म बंगदेश में हुआ था और अजीमगंज में वे अनेक वर्षों तक रहे तथा अजीमगंज में उन्होंने अनेक साहित्यिक रचनाएं की। उनकी रचनाओं का संग्रह नाहर संग्रहालय में विद्यमान है। ये पहले ऐसे कवि थे जिनका जन्म बंगदेश में हुआ था।

कासिम बाजार के मंदिर में संवत् १७८० माघ वदी ३ को पं. मुनि भद्रगणि द्वारा निर्मित और उ. कपूर प्रियगणि के प्रतिष्ठा कराने के उल्लेख जैन लेख संग्रह में मिलते हैं। संवत् १७८१ में गुलाब चंद सेठिया ने यति हीरागिरिजी की पादुका का निर्माण कराया था। संवत् १८२१ माघ सुदी १५ को महोपाध्याय समय सुन्दरजी की परंपरा में पं. हजारी नंदजी के उपदेश से मकसूदाबाद के कीरतबाग जियागंज में दादासाहब के चरणों का निर्माण करवाया तथा महेन्द्रसागर सूरिजी से श्री शोभाचंद मोतीचंदजी ने उसकी प्रतिष्ठा करवायी। उपाध्याय क्षमाकल्याण महाराजजी ने जयति हुअण भाषा-४१ गाथा-की रचना की थी। मकसूदाबाद निवासी

सुगालचंद के आग्रह पर महोपाध्याय समोसुन्दरजी की शिष्य परंपरा में पं. आसकरनजी के शिष्य आलमचंदजी ने संवत् १८१५ बैशाख सुदी ५ को जीव विचार स्तवन गाथा ११५ की रचना की थी। उसके बाद मौन एकादशी चौपाई, त्रैलोक के प्रतिमा स्तवन तथा सम्यक्त्व कौमुदी चौपाई की रचना की थी। संवत् १८४७ में उ. क्षमाकल्याण महाराज ने मकसूदाबाद में सुक्तिरचनावली की स्वोपज्ञवृत्ति सहित रचना की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में अराजकता के काल में भी मुर्शिदाबाद के अजीमगंज और जियागंज आदि क्षेत्रों में जैन साधुओं और यतियों का आवागमन होता रहा तथा धार्मिक साहित्य की रचना के साथ-साथ जैन समाज में धार्मिक चेतना का प्रभाव बना रहा। जगतसेठ के अवसान के बाद भी जैन समाज ने बंग देश में कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ ग्रन्थ

अथवर्वेद संहिता - संपा. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृत संस्थान बरेली, १९७०.

अभिधान चिन्तामणि (हेमचन्द्र) - संपा. हरगोविन्ददास बेचरदास, भावनगर, वीर संवत्, २४४६.

आचारंग निर्युक्ति (भद्रबाहु) - सूरत, १९४१.

आदि पुराण (जिनसेन) - संपा. पन्नालाल जैन, वाराणसी, १९६३.

आवश्यक निर्युक्ति (भद्रबाहु) - सूरत, १९४१.

उत्तर पुराण (जिनसेन) - संपा. पन्नालाल जैन, वाराणसी, १९६८.

ऋग्वेद संहिता - संपा. भट्टाचार्येण श्रीपादशर्मणा दामोदर भट्टसूनुना सान्तबलेकर कुलजेन, भारतमुद्राणालयम्, औन्ध-नगरम्, सतारा, १९४०.

कल्पसूत्र - संपा. और हिन्दी अनुवादक, महोपाध्याय विनयसागर, जयपुर, १९७७.

चक्रवर्ती तपन - बंगला समाज और साहित्य में जैन धर्म और संस्कृति. (बंगला)

तिवारी हरिप्रसाद नरसिंह प्रसाद - जैन धर्मावलम्बी राढ़ क्षेत्र की सराक जाति.

जैन धर्म के पृष्ठ पोषक राजा पुण्ड्र और उनकी राजधानी,
भगवान महावीर की सिद्धभूमि और तत्संलग्न और अंचल.

पाल, चित्तरंजन - बंगला देश की वृहत्तम नदी पद्मा.

मजुमदार, रमेशचन्द्र - प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली, १९९४.

मुखोपाध्याय श्यामचंद्र - बंगाल सीमान पर बसा सराक सम्प्रदाय.

नाहटा भंवरलाल - जगत सेठ.

पारख छोटेलाल - पहाड़पुर का जैन ताम्र पत्र लेख.

प्रबन्धकोश - बप्पभट्टसूरि, सिंघी जैन ग्रंथ माला -,

बांठिया हजारीमल - जगत सेठ की माता - एक आदर्श नारी की कहानी.

बसु गोपेन्द्र कृष्ण - बंगाल में जैन युग की स्मृति.

बसु त्रिपुरा - राढ़ भूमि में जैन धर्म.

बोथरा, लता - भारत में जैन धर्म, श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर कोलकाता।

राय निहार रंजन - बंगाली प्राचीन इतिहास.

विविध तीर्थकल्प (जिनप्रभसूरि) - संपा. मुनि जिनविजय, कलकत्ता १९३४.

सेन प्रबोध चन्द्र - बंगाल का आदि धर्म.

सेन क्षिति मोहन - जैन धर्म बंग देश.

सिंह, शिव प्रसाद - जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी - ५, १९९१.

शाह, उमाकान्त - सुवर्ण भूमि में कालकाचार्य, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, बनारस, १९५६.

पत्रिकाएं :

कुशल निर्देश - संपा. भंवरलाल नाहटा, श्री जिनदत्त सूरि सेवा संघ, कोलकाता, अंक १-१२ वर्ष १९७९.

श्रमण बंगला - जैन भवन, कोलकाता.

तित्थयर हिन्दी - जैन भवन, कोलकाता.

सराक संस्कृति और जैन धर्म - विशेषांक, तित्थयर १९९८.

भगवान महावीर २५००वां निर्वाण महोत्सव स्मारक ग्रन्थ, मुर्शिदाबाद.

आज की जोगी पहाड़ी, श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर स्मारिका, सेथिया, वीरभूमि, पश्चिमबंगाल.

सराक संस्कृति और जैन धर्म - तित्थयर विशेषांक १९९८.

Allchin, F.R. The Archaeology of Early Historic South Asia, Combridge University.

Bandhopadhyay - Jain Temples of Murshidabad.

Chanda, Rama Prasad - Notes on Pre-Historic Antiquities from Mohan-Jo-Daro, Modern Review, Calcutta, 1924.

Chowdhary - Political History of Northern India from Jain Sources.

Chattopadyay B.D. - Studies In Early History, Delhi-2003.

Dwivedi Dr. R.C. - Contribution of Jainism to Indian Culture. Motilal Banarsidas 1975.

Das Gupta Nupur - Settlement in Ancient Bengal.

Gupta P.C. - Jainism in Ancient Bengal

Hussain, Shahanara, Everyday Life in the Pala Empire, Asiatic Society, Dacca, 1968.

Jain Jagdish Chandra - Life in Ancient India as depicted in the Jaina Canons, New Book Co. Ltd. Bombay, 1947.

Lalwani K.C. - Bhagawati Sutra I-II. Jain Bhawan, Kolkata.

Kalhar - Studies In Art Iconography Architecture And Archeology of India and Bangla Desh.

Majumdar R.C. - Colonial And Cultural Expansion in South East Asia, W. Bulm, London, 1795.

Majumder, R.C., The History of Bengal, Vol. 1, The University of Dacca, Dacca.

Marshall, Sir John - Mohan-Jo-Daro and the Indus Valley Heinermann, London, 1898.

Mc. Crindle J.W. - Ancient India, ed by Ram Chandra Jain, Today & Tomorrow's Printers & Publishers, New Delhi - 5, 1972.

Mitra - Nepalese Bhudhist Tradition

pal Citaranjan - Mahamuni Jambu Swami and Bengal.

Pargiter F.E. - Ancient Indian Historical Tradition, Moti Lal Banarsidas, Delhi, 1962.

Sarkar D.C. - Religion Culture of Jain, University of Calcutta of 1973.

Sen B.C. - Some Historical aspects of the inscription of Bengal.

Shastri Nila Kanta - A Comparetive History of India. Calcutta 1957.

Smith V. A. - An cyclopaedia of Religions, Newyork 1921.

V. R. R. Diksitar - The Gupta Polity, Delhi-1993 (Reprint).

Jain Journal - Quarterly Magazine, Jain Bhawan, Kolkata.

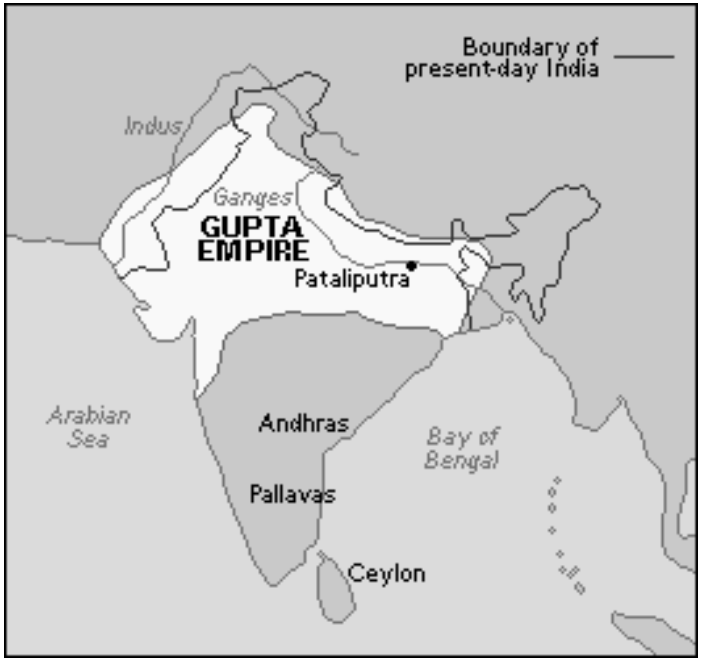

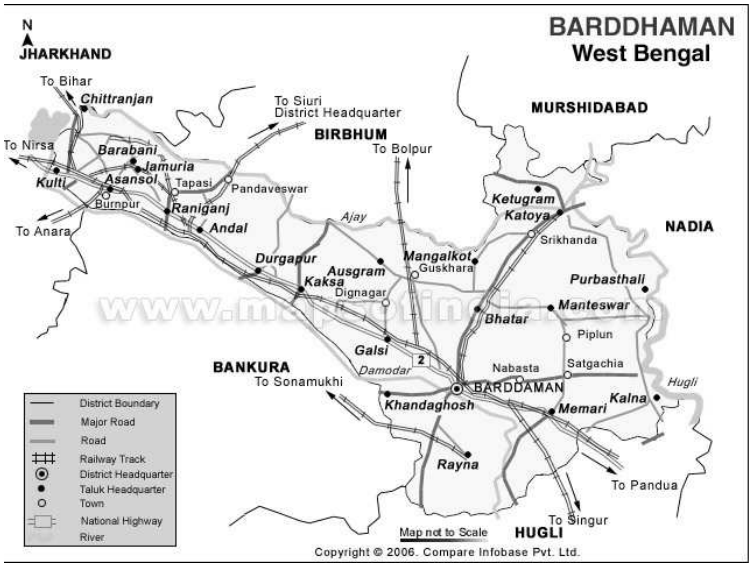

Boundary of present-day India
Indus
Ganges
MAURYAN EMPIRE
Pataliputra
Bharuch
Arabian Sea
Bay of Bengal
Ceylon

Boundary of present-day India
Indus
Ganges
GUPTA EMPIRE
Pataliputra
Andhras
Pallavas
Arabian Sea
Bay of Bengal
Ceylon

BARDDHAMAN
West Bengal
N
JHARKHAND
To Bihar
Chittranjan
To Siuri
District Headquarter
MURSHIDABAD
BIRBHUM
To Bolpur
To Nirsa
Barabani
Jamuria
Kulti
Asansol
Tapasi
Pandaveswar
Burnpur
Raniganj
To Anara
Andal
Ajay
Ketugram
Katoya
NADIA
Srikhanda
Durgapur
Kaksa
Ausgram
Mangalkot
Guskhara
Dignagar
Purbasthali
Manteswar
Bhatar
Piplun
Galsi
BANKURA
To Sonamukhi
Damodar
Nabasta
Satgachia
BARDDAMAN
Hugli
Khandaghosh
Memari
Kalna
Rayna
To Pandua
To Singur
HUGLI
District Boundary
Major Road
Road
Railway Track
District Headquarter
Taluk Headquarter
Town
National Highway
River
Map not to Scale
Copyright © 2006. Compare Infobase Pvt. Ltd.

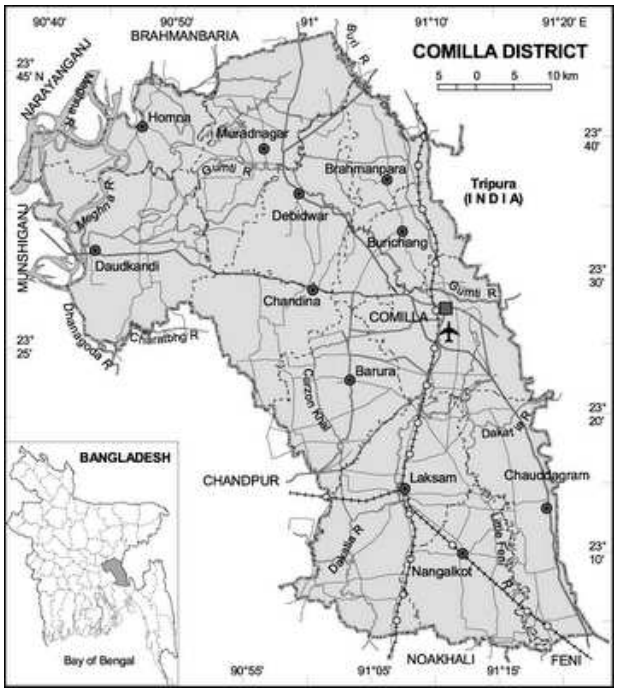

COMILLA DISTRICT
BRAHMANBARIA
NARAYANGANJ
MUNSHIGANJ
Homna
Muradnagar
Brahmanpara
Debidwar
Burichang
Daudkandi
Chandina
COMILLA
Tripura (I N D I A)
Barura
CHANDPUR
Laksam
Chauddagram
Nangalkot
NOAKHALI
FENI
BANGLADESH
Bay of Bengal

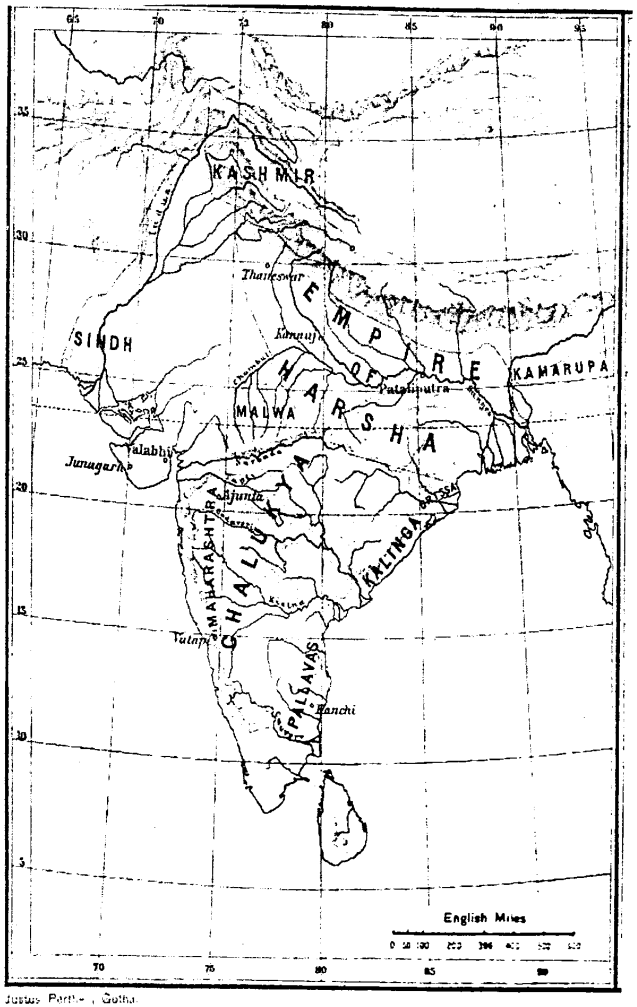

Justus Perthes, Gotha

INDIA IN THE VII. CENTURY A.D.

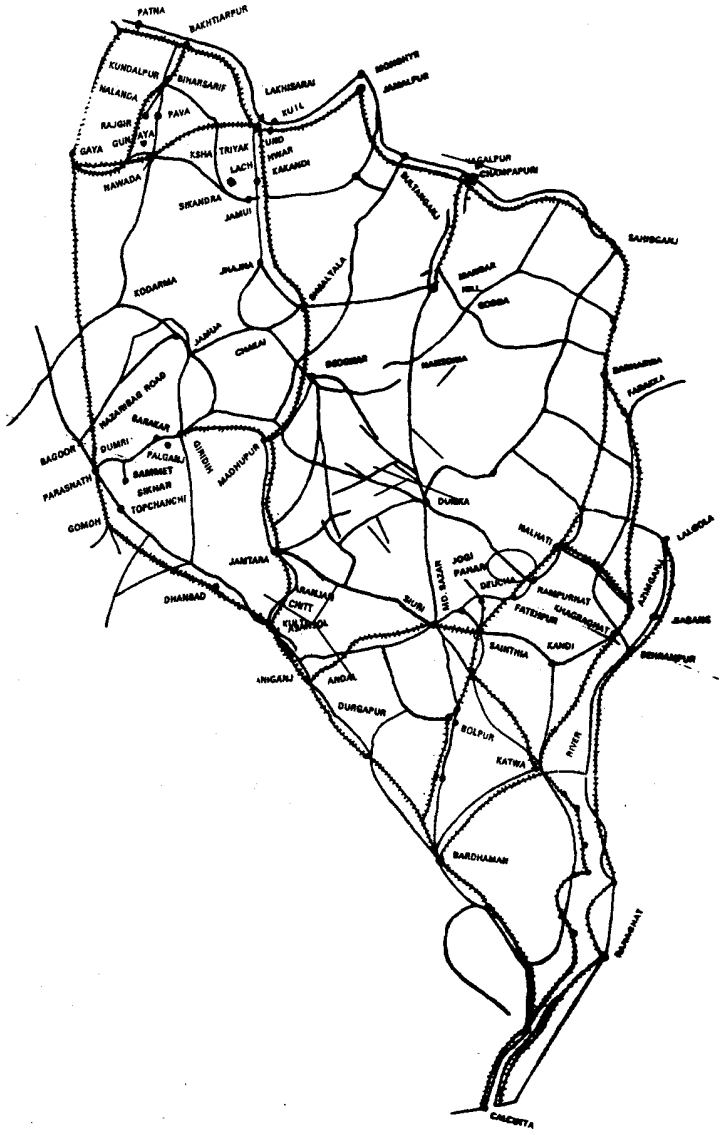

JOGI PAHARI (M.D. BAZAR)

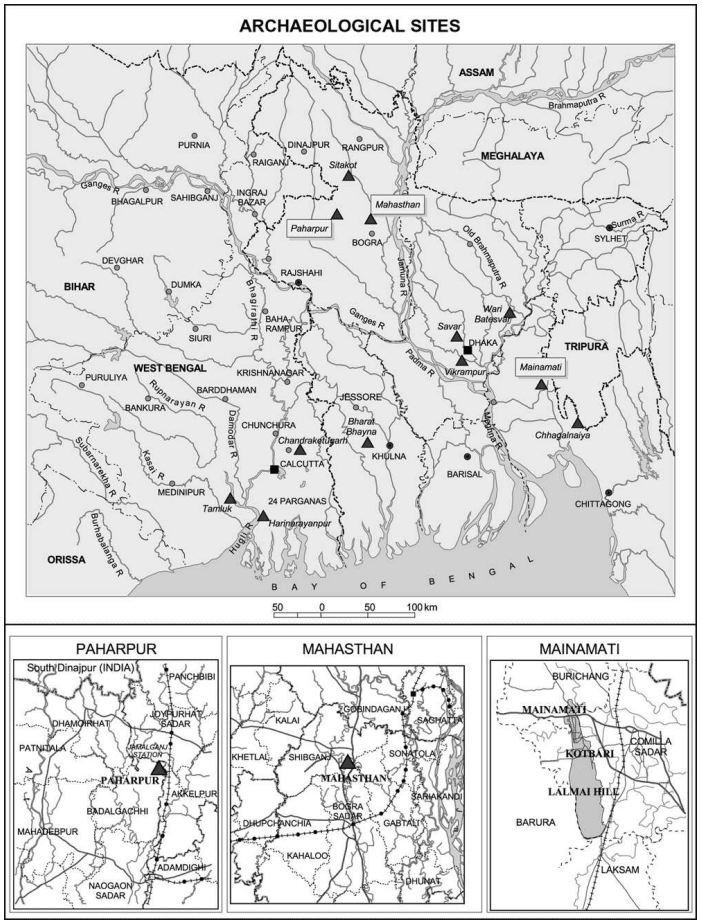

ARCHAEOLOGICAL SITES
ASSAM
MEGHALAYA
BIHAR
WEST BENGAL
TRIPURA
ORISSA
PURNIA
DINAJPUR
RANGPUR
RAIGANJ
BHAGALPUR
SAHIBGANJ
Paharpur
Mahasthan
Sitakot
BOGRA
SYLHET
DEVGHAR
DUMKA
RAJSHAHI
SIURI
PURULIYA
KRISHNANAGAR
BARDDHAMAN
BANKURA
CHUNCHURA
JESSORE
Savar
DHAKA
Vikrampur
Mainamati
KHULNA
BARISAL
CALCUTTA
MEDINIPUR
Tamluk
24 PARGANAS
CHITTAGONG
Chhagalnaiya
B A Y O F B E N G A L
50 0 50 100 km
PAHARPUR
MAHASTHAN
MAINAMATI
South Dinajpur (INDIA)
PANCHBIBI
DHAMOIRHAT
JOYPURHAT SADAR
PATNITALA
PAHARPUR
AKKELPUR
BADALGACHHI
MAHADEBPUR
ADAMDIGHI
NAOGAON SADAR
KALAI
GOBINDAGANJ
KHETLAL
SHIBGANJ
SONATOLA
MAHASTHAN
BOGRA SADAR
SARIAKANDI
GABTALI
DHUPCHANCHIA
KAHALOO
DHUNAT
BURICHANG
MAINAMATI
KOTBARI
COMILLA SADAR
LALMAI HILL
BARURA
LAKSAM

BANGLADESH
Bay of Bengal
Old Brahmaputra R
KISHOREGANJ
GAZIPUR
Manohardi
Belabo
Shibpur
Raipura
Palash
NARSINGDI
BRAHAMANBARIA
NARAYANGANJ
NARSINGDI DISTRICT
4 0 4 8 km
90°36'
90°44'
90°52' E
90°40'
90°48'
90°56'

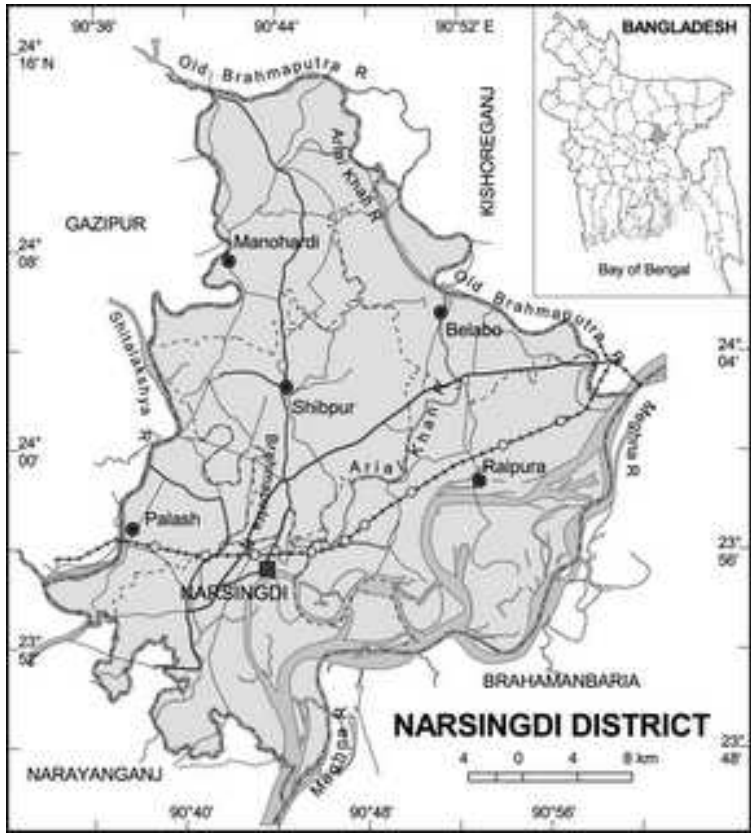

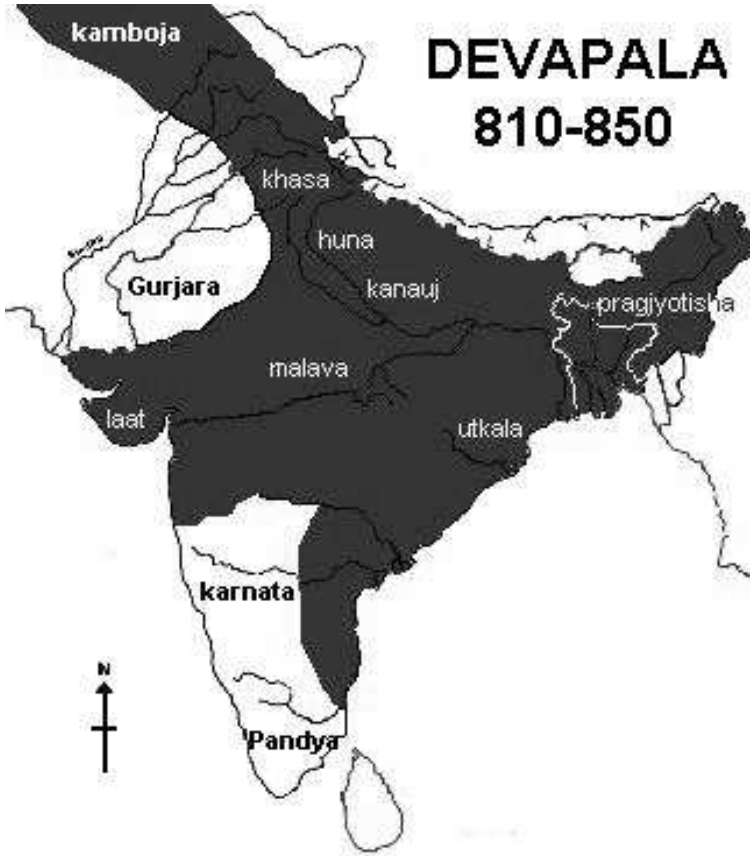

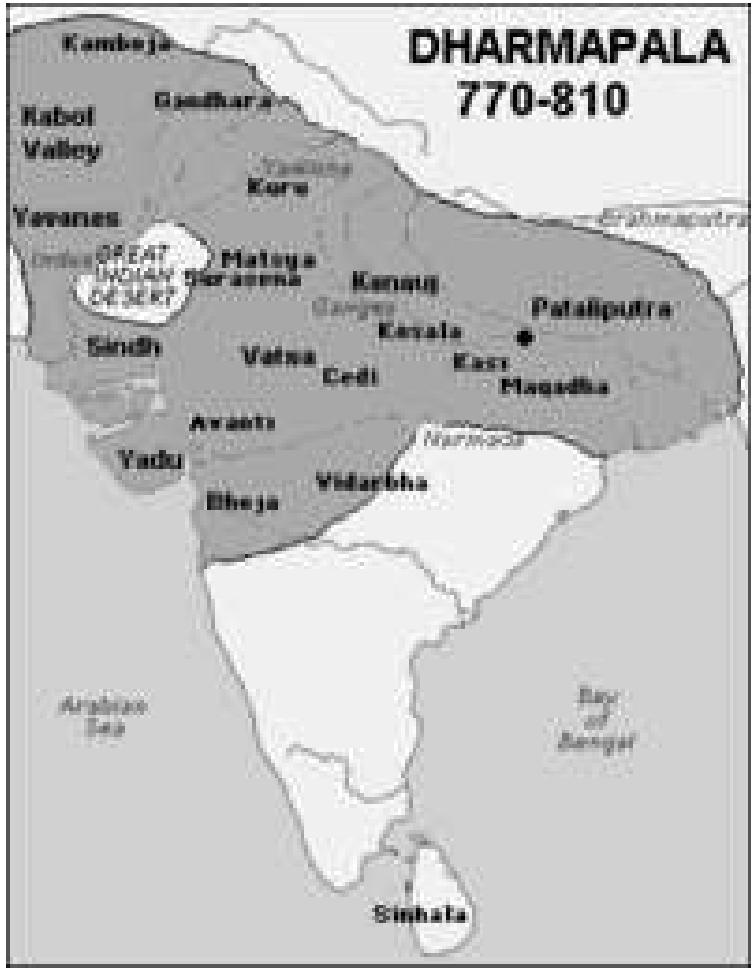

DEVAPALA
810-850
kamboja
khasa
huna
Gurjara
kanauj
pragjyotisha
malava
laat
utkala
karnata
Pandya
N

DHARMAPALA
770-810
Kamboja
Gandhara
Kabol
Valley
Kuru
Yawanes
GREAT
INDIAN
DESERT
Matsya
Surasena
Kanauj
Pataliputra
Kosala
Sindh
Vatsa
Cedi
Kasi
Magadha
Avanti
Narmada
Yadu
Vidarbha
Bheja
Arabian
Sea
Bay
of
Bengal
Sinhala

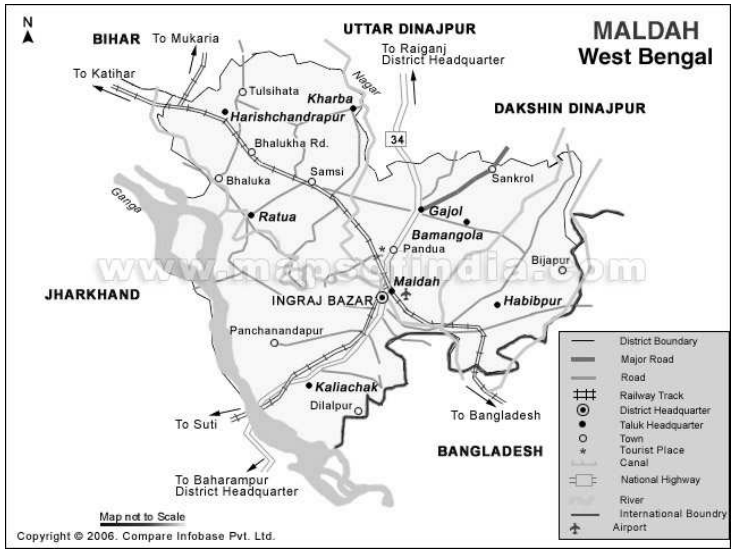

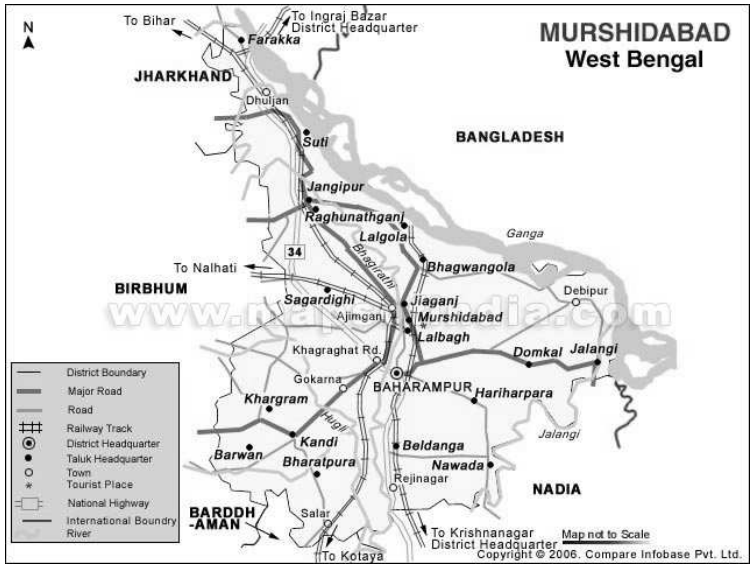

Mainamati Komila

Paharpur

Maha sthangarh

Paharpur

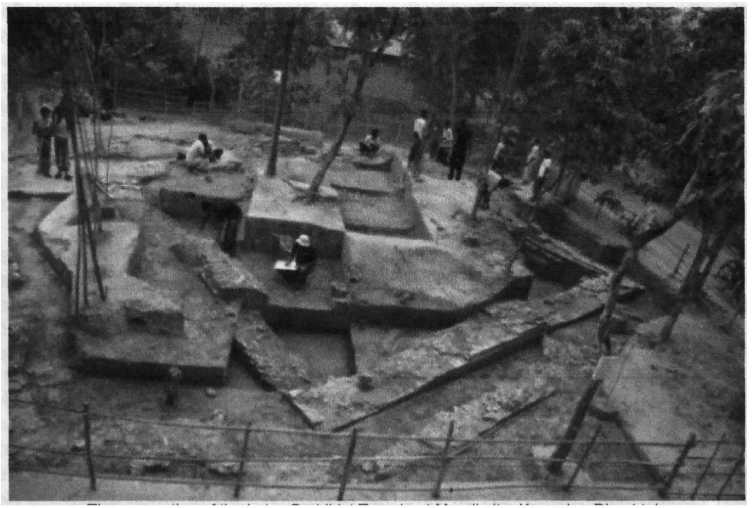

Lotus Temple

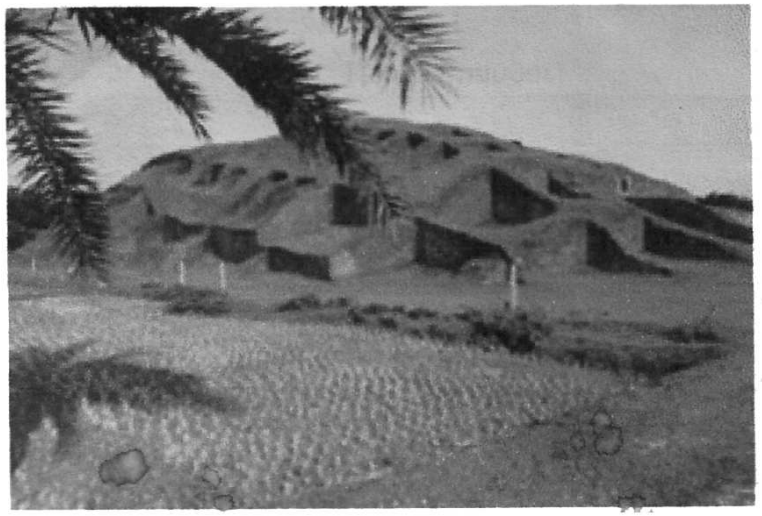

Maha sthangarh

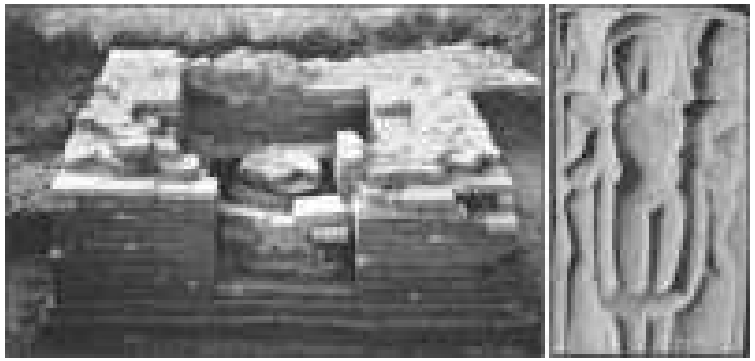

1800 years old Tirthankara Mallinath's Statue recoverd from Bangladesh

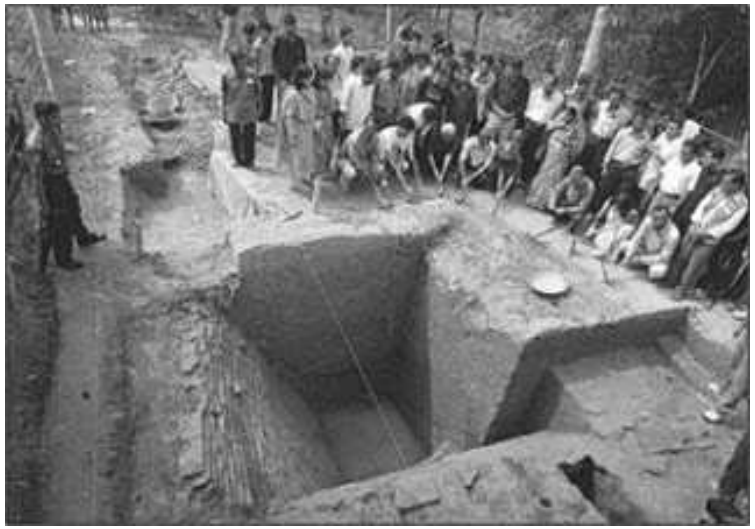

Excavation Place of Bari Bateshwar
Narsinghdihi, Bengladesh

Salban Vihara Mainamati

Coin of Ajat Shatru Era
600 B.C.

Candraketugarh

Candraketugarh

Bhasu Vihar excavated site Mahasthangarh

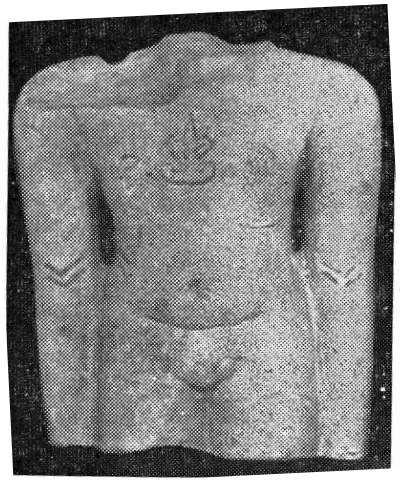

Tirthankara Idol of Chandraketugarh

Chintamani Parswanath
Azimganj

Neminath Mandir
Azimganj

Padamprabhuji Temple
Azimganj

Sumatinath Temple
Azimganj

Rambag Parswanath Temple
Azimganj

Sambhavnath Temple
Azimganj

Santinath Temple
Azimganj

Sri Adinathji, Kathgola

Jain Temple Kathgola

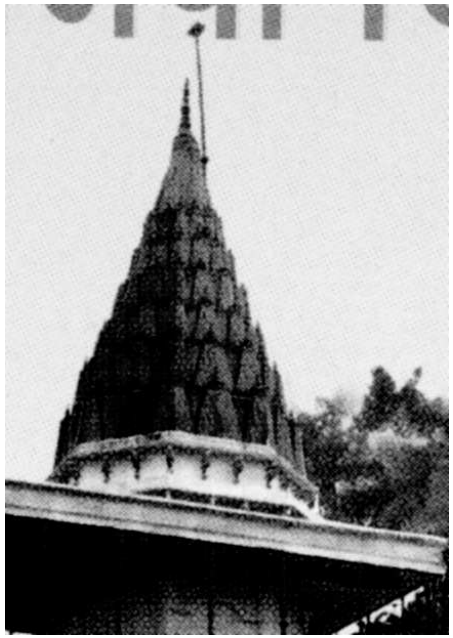

Sri Bimalnathji Temple
Jiaganj

Sri Bimalnathji Temple
Jiaganj

Sri Parsvanathji Temple
Jiaganj

Sri Sambhavanathji Temple
Jiaganj

Dadabari, Kiratbag
Jiaganj

Gauri Parsvanath
Azimganj